

किसानों के साथ हमारे उत्तरोत्तर बढ़ते हुए सरोकार ने हमें उनके सुख-दुःख के दृष्टिकोण से ज्यादा-से-ज्यादा सोचने को बाध्य किया। बारडोलो, संयुक्तप्रान्त और दूसरी-दूसरी जगहों में किसानों के आंदोलन खड़े हुए। न चाहते हुए भी स्थानीय कांग्रेस कमेटियों को 'स्वार्थों के संघर्ष' की समस्या का मुकाबिला करना पड़ा और अपने किसान मेम्बरों को कौन-सी कार्रवाई की जाय, इसका रास्ता भी बताना पड़ा। कुछ नुबों की सूबा-कमेटियों ने ऐसा ही किया।

सन् १९२९ के गर्मी के दिनों में खुद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपनी बम्बईवाली बैठक में इस समस्या का हिम्मत के साथ मुकाबिला किया और इसके मुतल्लिक मुल्क को एक आदर्श नेतृत्व दिया। अपने राष्ट्रीय आधार के रहते और राजनैतिक स्वतन्त्रता को महत्व देते हुए भी उसने जोरदार शब्दों में घोषित किया कि हमारे समाज का वर्तमान आर्थिक संगठन हमारी शरीबी के मूल कारणों में से एक है। उनका प्रस्ताव इस तरह का था :—

“इस कमेटी की राय में भारतीय जनता की भयंकर शरीबी और दरिद्रता का कारण सिर्फ विदेशियों द्वारा उसका शोषण नहीं है; बल्कि हमारे समाज का आर्थिक संगठन भी है, जिसे कि विदेशी हुकूमत त्रासन रखते हुए है ताकि यह शोषण जारी रहे। इसलिए इस शरीबी और दरिद्रता को दूर करने, साथ ही भारतीय जनता की दुरवस्था को सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि समाज के वर्तमान आर्थिक और सामाजिक संगठन में प्रान्तिकारी परिवर्तन लाया जाय और धीरे धियनता हटाई जाय।”

‘प्रान्तिकारी परिवर्तन’ ये शब्द अब भेने, थोड़े दिन हुए लखनऊ शहर में इस्तंमाल करने का सारम बिषय ती कुछ लोगों ने मनना कि राष्ट्रीय के पोषण के लिए ये बिलकुल नये है। कांग्रेस के इस दृष्टि-बिन्दु और नीति की आम घोषणा ने आगे शायद ही कोई समाजवादी जा सकता है। इसतर भी यह कहना कि कांग्रेस समाजवादी होकर है, कभी भूलना है। उनसे भारतीय जनता की शरीबी और दरिद्रता ने

दृष्टिकोण मियासी कथानक्य में सरद पहुँचाना है। यह हमारे नामने की बातों को साफ़ कर देना है और हमें अनुभव कराना है कि सच्ची राजनीतिक स्वतन्त्रता में—सामाजिक जाने दीजिए—सा-सा बातें होंगी। 'स्वतन्त्रता' की ही कई तरह में व्याख्या की गई है; लेकिन समाजवादियों के लिए तो उसका एक ही अर्थ है, और वह है साम्राज्यशाही में सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद। इसीलिए हमारे राजनीतिक मंत्राण के 'साम्राज्यशाही-विरোধी' पहलू पर जोर दिया जाना है और इससे हमारी बहुतेरी कार्रवाइयों की जाँच की जा सकती है।

इसके अलावा समाजवादी दृष्टिकोण (जैसा कि पिछले पन्द्रह सालों में कांग्रेस निम्न-निम्न रूपों में करती आ रही है) जोर देता है कि हमें जनता के लिए लड़ा होना चाहिए और हमारी लड़ाई जनता की होनी चाहिए। आजादी के माने होना चाहिए जनता के शोषण का अन्त।

इससे हम समझ सकते हैं कि किम किस्म के स्वराज्य के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं। डाक्टर भगवानदास अमें ने आग्रहपूर्वक कह रहे हैं कि स्वराज्य की परिभाषा होजानी चाहिए। उनके बहुतेरे विचारों में मैं सहमत नहीं हूँ; लेकिन उनके इन कथन में तो सहमत हूँ कि हमें अब स्वराज्य के बारे में अस्पष्ट अर्थ न रखकर किम किस्म का 'स्वराज्य' हम चाहते हैं, यह साफ़ कर देना चाहिए। क्या अंग्रेजों के बाद मौजूदा पूँजीपतियों के ही हाथों में मुल्क का भावी शासन-सूत्र जायगा? स्पष्टतः यह कांग्रेस की नीति नहीं हो सकती है। क्योंकि हमने अक्सर यह ऐलान किया है कि हम जनता के शोषण के विरुद्ध हैं। इसलिए हमें बाध्य होकर जनता की शक्तिशाली बनाने का उद्योग करना चाहिए, ताकि भारत में साम्राज्यशाही का अन्त होने ही वह मफलतापूर्वक अपने हाथों में हुकूमत रख सके।

जनता को और उसके ज़रिये कांग्रेस-संगठन को मजबूत बनाना अपने उद्देश्य के लिए ही जरूरी नहीं है, बल्कि लड़ाई के लिए भी जरूरी है। सिर्फ़ जनता ही उस लड़ाई को सच्ची ताकत दे सकती है; सिर्फ़ वही राजनीतिक लड़ाई को आखिर तक लड़ सकती है।

इस तरह समाजवादी दृष्टिकोण हमारी मौजूदा लड़ाई में हमें मदद देता है। यह बेकार किताबी बातों की बहस बढ़ाने और उलझनों से भरे हुए सुदूर भविष्य का सवाल नहीं है; बल्कि अपनी नीति को अभी निश्चित कर लेने का प्रश्न है, ताकि हम अपने राजनैतिक संग्राम को अधिक शक्तिशाली और पुरजोर बना सकें। यह समाजवाद नहीं है। यह साम्राज्यवाद-विरोधी बात है। समाजवादी दृष्टिकोण से देखा गया राजनैतिक पहलू है।

समाजवाद इससे और आगे जाता है। उसका ध्येय है पूंजीवाद की लान पर समाज का निर्माण। यह आज मुमकिन नहीं है। इसलिए कुछ लोगों का इसपर सोचना बेमौक़े और सिर्फ ज्ञान-वर्धन की ताव होगी; लेकिन ऐसा देखना दोषपूर्ण है; क्योंकि ध्येय का स्पष्टीकरण—भले ही उसका हम निश्चय न करें—और उसपर सोचना आगे बढ़ने में मदद करता है। 'राजनैतिक स्वतन्त्रता हासिल होने के बाद शासन किसके हाथों में आयेगा? क्योंकि सामाजिक परिवर्तन इसपर निर्भर करेगा। और, अगर हम सामाजिक परिवर्तन चाहते हैं तो उन्हींको यह 'शासन' कार्यक्षम में लाने के लिए मिलना चाहिए। अगर हमारा उद्देश्य यह नहीं है, तो इसका मतलब होता है हमारा यह संग्राम 'अपरिवर्तनवादी' पूंजीपतियों का मार्ग निष्कण्ठक बनाने के लिए है।

समाजवादी तरीका मार्क्सवादी तरीका है। यह भूत और वर्तमान इतिहास का अध्ययन करने का तरीका है। मार्क्स की महत्ता आज कोई अस्वीकार नहीं करेगा, लेकिन बहुत कम आदमी अनुभव करेंगे कि उसने घटनाओं का जैसा मूल्का मतलब लगाया है उसने इतिहास का लम्बा और पक्का मार्ग प्रकाशमय होगा, यह कोई आकस्मिक और धम-धमरपुर्ण नई बात नहीं थी। इसकी जड़े भूतकाल में ही गहराई तक खड़ी गई थीं। यह पुराने सीको, रोमनों तथा रिनेसा (जाग्नि) के और उनके आगे के विचारों का मालूम था। उन्होंने इतिहास को आन्दोलन के रूप में मनसा और समसा विचारों तथा स्वार्थों के मध्य के रूप में। मार्क्स ने इन पुराने दर्शन (वि. मत्सरी) का विज्ञान का आधार

इसके विकसित किया और दुनिया के बाकी ऐसे मुसलमानों से अलग होकर लोग मूढ़ हो गये। हो सकता है कि हमें कोई योजना हो या हमें कुछ कुछ बातें पसन्द आती हों, मगर यही नहीं है। ऐसे राजदूतों को हमें कब से नहीं, बल्कि मायावत परिस्थितियों और उचिततम समय तक एक नये वैज्ञानिक दृष्टि के रूप में हमें हमें देखना चाहिए। इस अर्थ में ही कुछ देकर कहा जाता है कि हमारे ने जो इन के अधिक पहलू का ही अधिक महत्त्व दिया है। उनमें ऐसा कहकर दिया है, क्योंकि यह आवश्यक था और साथ ही हमें देना ही जरूरत पड़ती है। जो इन पहलूओं की हमें अवहेलना नहीं की है और उन बातों पर ध्यान देकर दिया है कि इनके अर्थ में जाना जा सके है, जो पहलूओं को रूप मिला है।

मासों एक ऐसा नाम है, जो उनके अर्थ में हम जाननेवालों को भयभीत कर देता है। उनके लिये हम सम्बन्ध में एक बहुत आदरणीय और सम्मानित ब्रिटिश लिबरल ने, जो हींगज कान्तिहारी नहीं है, थोड़े दिन पहले जो-कुछ कहा है, वह दिलचस्प हो सकता है। जून १९३१ में लार्ड लॉथियन ने लण्डन-महल आफ इकानामिक्स के मासिक प्रलेखों के मोर्चे पर अपने भाषण में कहा था —

“हम लोग बहुत दिन से जा मानने के आदी हो गये हैं, क्या उसकी अपेक्षा मौजूदा समाज ही बुराईया ही मानना द्वारा ही यह तजवीज में कुछ ज्यादा सचाई नहीं है ? में मानना हूँ। कि मानस और उन्नति की भविष्यवाणियों अत्यन्त रुढ़ार रूप में मंच हो रही है। जब हम पश्चिमी दुनिया की तरफ, जैसीकि वह है, और उसकी हमेशा की तकलीफों की ओर निगाह करते हैं, तो क्या यह माफ मान्य नहीं इना कि हमें उसके मूल कारणों को—अबतक हम जिस हद तक जाने के आदी हो गये हैं उससे कहीं अधिक गहराई के साथ—ज़रूर डूब निकालना चाहिए ? और जब हम ऐसा करेंगे, तो में समझना हूँ, देखेंगे कि मासों की तजवीज बहुत कुछ सही है।”

ऐसे व्यक्ति का, जो हिन्दुस्तान का वाइसराय आसानी में हो सकता

हैं, अगर लिखी बातों का स्वीकार कर लेना कुछ महत्व रखता है। अपने वातावरण के दबाव और अपनी श्रेणी की द्वेष-भावना के होते हुए भी उसकी तीव्र बुद्धि मार्क्स की तर्जवीज की तरफ खिंचे बिना न रह सकी। हो सकता है, पिछले पाँच साल में लाईं लोयियन के विचार बदल गये हों। मैं नहीं कह सकता, १९३१ में उन्होंने जो-कुछ कहा उसपर कित्त हद तक वह आज कायम हैं। लेकिन आज मार्क्स का सिद्धान्त कांग्रेस के सामने नहीं है। उसके सामने बात तो यह है कि या तो हम फैली हुई घुराघुरियों में लड़ें या उनके कारणों को ढूँढ निकालें। जो लोग घुराघुरियों के खुद गिकार हैं, वे ज्यादा कर क्या सकते हैं? "उन्हें याद रखना चाहिए, वे कुपरिणामों में लड़ते हैं, उनके कारणों में नहीं। वे अन्तर्भुगी आन्दोलन को रोकते हैं, उसके रस को नहीं बदलते, वे मर्ज को दबाते हैं, डूर नहीं करते।"

वास्तविक समस्या है—परिणाम या कारण? अगर हम कारण ढूँढना चाहते हैं, जैसा कि हमें जरूर चाहिए, तो समाजवादी विरलेपण उसपर प्रकाश डालेगा। और इस तरह समाजवाद, हालांकि समाजवादी दामन-स्टेड—मुद्दर भविष्य का एक सपना ही सकता है और हममें से बहुतेरे उसे भोगने के लिए जिन्दा नहीं रह सकते, परंतु मान सनय में मनरे में बधाने वाला प्रकाश है, जो हमारे पप को आलोकित करता है।

समाजवादी ऐसा ही अनुभव करने हैं, लेकिन उन्हें यह जानना जरूरी है कि बहुतेरे दूसरे लोग, मौजूदा सशाम के उनके साथी ऐसा नहीं सोचते। उन्हें अपनेकी उपास अवलमन्द समझकर—जैसा कि कुछ मनसने हैं—अपना अलहरा गिराह नहीं बना लेना चाहिए। वे दूसरे तरीती में अपना काम निपाह सकते हैं और इसमें उनके दूसरे साथी और दृष्ट असी में समूधा ऐग उनके तरीती में सोचने का जिन जा सकते हैं। त्तीय हम भते ही समाजवाद के बारे में सफल या असफल हैं, पर स्वाधीयता के लक्ष्य की जोर तो एसाय भूष करने हैं।

१५ ओलाई १९३५।

किसान-मजदूर संस्थायें और कांग्रेस,

मेरे पास विभिन्न कांग्रेस कमेटियों और कांग्रेसमैनों के अनेकों पत्र आये हैं, जिनमें यह पूछा गया है कि कांग्रेसमैनों का किसान-मजदूर-संस्थाओं के प्रति क्या कर्तव्य है? इस प्रकार के संघ बनाने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए या नहीं? यदि उनको बनने दिया जाय तो उनका कांग्रेस से क्या सम्बन्ध हो? कई प्रान्तों में ये समस्यायें पैदा होगई हैं, इनपर हमें गम्भीरता से विचार करना चाहिए। कभी-कभी ये समस्यायें पूर्ण-तथा व्यक्तिगत, कभी-कभी प्रान्तीय होती हैं; किन्तु इनके पीछे महत्वपूर्ण बातें छिपी होती हैं। स्थानीय समस्यायें जब हमारे सामने आती हैं तो हमें उनके विशेष अंगों तथा उनके साथ जिन व्यक्तियों का सम्बन्ध है, उनके बारे में भी विचार करना आवश्यक है। इसके साथ ही हमें इन मामलों की तह में जाने में पहले सिद्धान्तों और मुख्य समस्याओं की पूरी तरह से ध्यान दे रखना चाहिए।

यह समस्या क्यों पैदा हुई? यह कुछ व्यक्तियों के प्रयत्न में पैदा नहीं हुई बल्कि उस हालचाल का परिणाम है जिसमें हम फसे हुए हैं। यह इन बातों का विगह है कि जनसाधारण में जागृति पैदा हो रही है और हमारा आन्दोलन जो पकड़ा जा रहा है। यह जागृति कांग्रेस के आन्दोलन में ही पैदा हुई है अब इसका अर्थ भी कांग्रेस को ही निकलना चाहिए। कांग्रेस ने इसके लिए लगातार कोशिश की है। इसलिए अगर कामवादी मिलती है या कांग्रेसमैनों को उसे अपनाते में सहाय नहीं करना चाहिए। इस आन्दोलन के साथ कभी-कभी हमारे सामने कठिनाइयाँ आ जाती हैं किन्तु फिर भी इसका स्वरूप हमें करना ही चाहिए। ऐसी स्थिति दूसरों को भी धीरे-धीरे स्थिर होती ही है। कांग्रेस

में कार्य करने के लिए कार्यकर्ताओं का ध्यान आकर्षित करने के लिए ही हम 'मुस्लिम-जन-सम्पर्क' शब्द का प्रयोग करते हैं।

जन-साधारण से दो प्रकार से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। एक तरीका तो यह है कि हम उन्हें कांग्रेस का सदस्य बनायें और ग्राम-कमेटियों की स्थापना करें। दूसरा यह है कि किसान और मजूर-संघों से सम्बन्ध स्थापित करें। हमारे लिए पहला मार्ग ही उचित है। बिना पहले मार्ग को ग्रहण किये दूसरे पर चला ही नहीं जा सकता; क्योंकि दूसरा पहले से सम्बन्धित है। यदि कांग्रेस का जन-साधारण से सम्पर्क नहीं होगा तो उसपर मध्यम श्रेणी का प्रभाव होना अनिवार्य है। इस प्रकार वह अपना दृष्टिकोण जन-साधारण का दृष्टिकोण न रख सकेगी। अतः प्रत्येक कांग्रेसमैन का विशेषतया उसका जो किसान-मजूरों के हितों को अधिक प्रिय समझता है, यह कर्तव्य है कि वह उन्हें कांग्रेस के सदस्य बनाकर ग्राम-कमेटियाँ स्थापित करे।

कुछ दिन हुए इस बात पर विचार किया गया था कि किसान और मजूर-संघों का कांग्रेस में सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाय और इसके लिए उन्हें कांग्रेस में प्रतिनिधित्व दे दिया जाय। इसपर आज भी विचार हाँगहा है। इसके लिए कांग्रेस के विधान में परिवर्तन करना होगा। मैं नहीं जानता कि परिवर्तन हो सकेगा या नहीं और अगर हो सकेगा तो कब ? व्यक्तिगत रूप से मैं यह बात मान ली जाने के पक्ष में हूँ। युक्तप्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने जिस बात की सिफारिश की है उसपर धीरे-धीरे अमल होना चाहिए। शुद्ध में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होगा; क्योंकि ऐसे मध्य जो अच्छी तरह से संगठित हैं, बहुत कम हैं। साथ ही उन्हें आने से सम्बन्धित करने के लिए कांग्रेस कुछ शर्तें भी रख देगी। इस समय तो यह सवाल ही पैदा नहीं होता; क्योंकि कांग्रेस के विधान में इसके लिए स्थान ही नहीं है। यह बहस का सवाल है, इसलिए इस समय हमें इधर अधिक ध्यान नहीं देना है। जो व्यक्ति इस प्रकार के परिवर्तन के पक्ष में है, उन्हें जानना चाहिए कि इस परिवर्तन के लिए वह कांग्रेस में बाहर रहते हुए अधिक जोर

कर सकती। समय-समय पर मजूरों की जो समस्याएँ और शिकायतें उठते हैं, उनका मजूर-संघ ही निपटारा कर सकते हैं। आज की जड़ोजड़ के दृष्टिकोण में मजूर-संघों का होना भी आवश्यक है; क्योंकि इसमें शक्ति बढ़ती है, और जागृति भी पैदा होती है। इसलिए कांग्रेसमैनों को मजूर-संघों के बनाने में सहायता देनी चाहिए, और जहाँतक हो सके, वे दैनिक झगड़ों में भी मजूरों की सहायता करें। स्थानीय कांग्रेस कमेटी और मजूर-संघ को सहयोगपूर्वक कार्य करना चाहिए। मैं मानता हूँ कि मजूर-संघ कांग्रेस के आधीन नहीं हैं और न ही उसके नियन्त्रण में हैं; किन्तु उसे यह मानना चाहिए कि राजनैतिक मामलों में कांग्रेस ही नेतृत्व स्वीकार करे। किसी अन्य मार्ग का अवलम्बन करना आजादी की जंग तथा मजूर-आन्दोलन के लिए घातक होगा। आर्थिक मामलों में तथा मजूरों की अन्य शिकायतों के सम्बन्ध में मजूर-संघ अपना जो चाहें सौ कार्यक्रम रख सकते हैं, चाहे वह कांग्रेस के कार्यक्रम की अपेक्षा अधिक अग्रगामी हो। कांग्रेसमैन भी व्यक्तिगत रूप से मजूर-संघों के सदस्य या सहायक हो सकते हैं। इस प्रकार वे उन्हें परामर्श भी दे सकते हैं। किसी कांग्रेस कमेटी को मजूर-संघ पर नियन्त्रण रखने का यत्न नहीं करना चाहिए। मुझे पता चला है कि हाल ही में एक कांग्रेस कमेटी ने एक मजूर-संघ की कार्यकारिणी के चुनाव में हस्तक्षेप किया। मेरी राय में इस प्रकार की बातें सर्वथा अनुचित हैं और ऐसा करना यूनियन के साथ अन्याय है। इससे आपस में मनोमालिन्य हो सकता है तथा यूनियन के कार्य में भी बाधा पड़ने की आशंका है। हाँ, जो कांग्रेसमैन मजूरों में काम करते हैं, उन्हें मजूर-संघों के कार्यों में भाग लेने का पूर्ण अधिकार है।

शहरों के तांगेवाले, ठेलेवाले, इक्केवाले, मल्लाह, पत्थर तोड़नेवाले, मामूली क्लर्क, प्रेस-कर्मचारी, भंगी इत्यादि को भी अलग-अलग अपने संघ बनाने का पूर्ण अधिकार है। इन्हें कांग्रेस का सदस्य भी बनाया जा सकता है; किन्तु कुछ इनकी अपनी समस्याएँ भी हैं तथा संगठन से ये शक्तिशाली भी होते हैं और इनमें आत्म-विश्वास भी पैदा होता है। वाद में ये कांग्रेस में भी आसानी से कार्य कर सकेंगे। इसका सीधा

अपनी संस्था समझते हैं। हमने देखा है, कई स्थानों में किसान-आन्दोलन शक्तिशाली होते हुए भी वहाँ किसान-संघों की संख्या में वृद्धि नहीं हुई। जिन गाँवों में कांग्रेस कमेटियाँ ठीक तरह कार्य नहीं कर रही हैं, वहाँ देर या जल्दी से किसान-संस्थाएँ जरूर उनकी पूर्ति करेंगी। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि किसानों में जागृति पैदा हो रही है और उनमें यह भावना आती जा रही है कि उन्हें इस असह्य दशा से अपना छुटकारा करना चाहिए। यद्यपि इस जागृति का मुख्य कारण आर्थिक तंगी है; किन्तु कांग्रेस के नेतृत्व में जो आजादी की जद्दोजहद हो रही है, उससे भी उन्हें प्रोत्साहन मिला है और उन्हें बहुत-सी ऐसी बातों का ज्ञान होगया है, जिन्हें वे आज तक निर्जीव प्राणी के समान सहन कर रहे थे। उन्हें संगठन की अहमियत तथा सामूहिक कार्यों की ताकत का भी पता चल गया है। इसलिए वे इंतजार में हैं। अगर कांग्रेस उनकी ओर आर्कापित न हुई तो कोई और संस्था उस ओर जायगी और वे उसका साथ देंगे। लेकिन वही संस्था उनके हृदय में स्थान प्राप्त कर सकती है जो उनकी मुसीबतों को दूर करने का उन्हें मार्ग दिखायगी।

हम देख रहे हैं कि आज ऐसे आदमी भी किसानों का दुःख दूर करने और उन्हें आर्थिक तंगी से मुक्त करने की बात कह रहे हैं जिन्होंने इससे पूर्व कभी भी किसानों की ओर ध्यान नहीं दिया होगा। राज-नैतिक प्रतिगामी भी आज किसान-कार्यक्रम की बातें कर रहे हैं। राज-नैतिक प्रतिगामियों ने कभी उनको न लाभ पहुँचाया और न पहुँचा सकते हैं; लेकिन इससे हमें यह साफ़ तौर से मालूम हो जाता है कि आज हवा का रुख किस ओर है। अब हमें गाँवों के उन झोपड़ों की ओर ध्यान देना चाहिए, जिनमें हमारे मुसीबतजदा किसान भाई रहते हैं। यदि उनके दुःख दूर न किये गये तो एकदम भयानक उथल-पुथल मच जायगी। भारत की सबसे बड़ी समस्या अर्थात् किसानों की समस्या ही मुख्य है।

कांग्रेस ने पूरी तरह से इस बात को महसूस कर लिया है। इसलिए राजनैतिक कामों में लगे रहने के बावजूद कांग्रेस ने किसान-कार्यक्रम तैयार

इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करने में कठिनाइयाँ भी पड़ेगीं और कभी-कभी मतभेद हो जाने का भी डर होगा। हमें इनका सामना करना होगा। हमारी राजनैतिक समस्यायें जितनी वास्तविक होती जाती हैं, उतना ही उनका सम्बन्ध हमारी दैनिक समस्याओं से होता जाता है। समस्याओं का रूप नित्य बदलता रहता है। उनमें विपमता भी उत्पन्न होती रहती है। जीवन ही विपम है, हमें किसी-न-किसी प्रकार इन्हें मुलजाना होगा।

जो बात सैद्धान्तिक रूप से ठीक होती है, वह सदा काम में लाने पर ठीक उतरती हो, ऐसा नहीं है। किसान-संस्थाओं के प्लेटफार्म का उपयोग कभी-कभी कांग्रेस के खिलाफ भी होजाता है। प्रतिक्रियावादी भी उससे लाभ उठा लेते हैं और कभी-कभी स्थानीय कांग्रेस कमेटियों के पदाधिकारियों से असन्तुष्ट होकर कुछ व्यक्ति इसका नाजायज फ़ायदा उठाते हैं। कांग्रेस-द्रोही तथा वे व्यक्ति जिनपर अनुशासनात्मक कार्रवाई की गई है, इन्हें अपना अड्डा बना लेते हैं। मुझे रिपोर्ट मिली है कि किसी ज़िले में जिला-राजनैतिक कांग्रेस के अवसर पर कुछ दूरी पर किसान-सम्मेलन किये गये हैं। कहीं-कहीं जुलूसों और झण्डे के प्रश्न को लेकर भी झगड़ा हुआ है।

इस प्रकार की बातें सर्वथा आपत्तिजनक हैं। समस्त कांग्रेसमैनों को इनका विरोध करना चाहिए। इसमें कांग्रेस के उद्देश्य को तो नुक़सान नहीं पहुंचता; लेकिन किसानों में गोलमाल होजाती है। झण्डे के संबंध में मैं पहले ही लिख चुका हूँ और फिर उसे दोहरा देना चाहता हूँ कि राष्ट्रीय झण्डे का अपमान, चाहे कोई भी करे, सहन नहीं किया जा सकता। हमें लाल झण्डे से कोई शिकायत नहीं। मैं उसकी इज्जत करता हूँ। लाल झण्डा मजूरों की जद्दोजहद की निशानी है। लेकिन उसकी राष्ट्रीय झण्डे से होड़ लगाना ठीक नहीं।

कांग्रेस पर किये जानेवाले आक्रमण को हम सहन नहीं कर सकते। जो व्यक्ति ऐसा करते हैं वे कांग्रेस को हानि पहुँचाते हैं। इससे मेरा यह मतलब नहीं कि कांग्रेस की आलोचना न की जाय। आलोचना करने की सब को स्वतन्त्रता है। किसी भी संस्था के जीवन की यह निशानी है।

काँग्रेस और मुसलमान

मैंने कहा था कि जल्द ही तौर पर मुल्क में सिर्फ दो दल हों—मरकाद और काँग्रेस। श्री जिन्ना ने अपने वक्तव्य में इसका प्रतिवाद किया है। उन्होंने मुझे याद दिलाई है कि एक तीसरा दल भी है, और वह है भारतीय मुसलमान। अपने व्याख्यान में उन्होंने कुछ बहुत माफ़ की बातें कही हैं। मैं बिहार में इधर-से-उधर दौड़ रहा हूँ और श्री जिन्ना की तक्रारों पर जल्द ही गौर करने के लिए मेरे पास वक्त कहाँ है? लेकिन जो कुछ उन्होंने कहा है, वह महत्वपूर्ण है और मेरे लिए जल्द ही होगया है कि अपने वेहद व्यस्त कार्यक्रम में नें थोड़ा-सा समय निकालूँ और दिनभर के भारी काम के बाद उनके बारे में कुछ कहूँ।

मुझे दिखाई पड़ता है कि श्री जिन्ना ने जो कुछ कहा है वह निस्वय ही परले तिर्रे की साम्प्रदायिकता है। बंगाल के इस्लामी मामलों में काँग्रेस के हस्तक्षेप करने पर उन्होंने आपत्ति की है और कहा है कि मुसलमानों को काँग्रेस खुदमुल्तार रहने दे। श्री जिन्ना की यह आपत्ति और माँग बिल्कुल वैसी ही बात है जैसी कि हिन्दू-साम्प्रदायवादियों की और से भाई परमानन्द ने अक्सर पेश की है। नतीजा देना जाय तो श्री जिन्ना के कहने का मतलब यह है कि सार्वजनिक विभागों में इस्लामी मामलों में गैर-मुस्लिमों को दखलान्दाजी करने का कोई हक़ न हो। राजनीति में, सामाजिक और आर्थिक मामलों में मुसलमान एक दल के रूप में अलहदा काम करें, और दूसरे दलों के साथ वैसे ही व्यवहार करें जैसे कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ करता है। ऐसा ही मजदूर-संघ, किसान-संघ, व्यापार, व्यापारी-संघ और ऐसी ही संस्थाओं और कामों में हो। हिन्दुस्तान में मुसलमान साम्प्रदाय में एक अलहदा राष्ट्र हैं और जो

‘भारतमाता की जय’

सभा और जुलूसों के नारे हम दिनभर बेहद परेशान रहे। अम्बाला से चलकर हम करनाल पहुँचे। वहाँसे पानीपत, फिर सोनीपत और अन्त में रोहतक। खूब जोश और भीड़-भाड़ रही और आखिरकार पंजाब का दौरा खत्म हुआ। एक शान्ति की भावना मेरे भीतर उठी। कितना बोझ सिर पर था और कितनी थकान थी ! अब तो ऐसे लम्बे आराम की जरूरत थी जिसमें जल्दी ही कोई विघ्न-बाधा आकर न पड़े।

रात होगई थी। हम तेजी से रोहतक-दिल्ली रोड की ओर बढ़े; क्योंकि उन्नी रात को हमें दिल्ली पहुँचकर गाड़ी पकड़नी थी। नाँद मुझे बुरी तरह घेर रही थी। यकायक हमें रुकना पड़ा; क्योंकि बीच सड़क पर आदमी और औरतों की भीड़-की-भीड़ बैठी थी। कुछेक के हाथों में मशालें थीं। वे आगे बढ़कर हमारे पास आये और जब उन्हें संतोष हो-गया कि हम कौन हैं, तब उन्होंने बताया कि दोपहर से वे वहाँ बैठे-बैठे इंतजार कर रहे हैं। वे सब हृष्ट-पुष्ट जाट थे। उनमें ज्यादातर छोटे-मोटे जमीदार थे। उनसे बिना थोड़ी-बहुत बातचीत किये आगे बढ़ना मुमकिन नहीं था। हम बाहर आये और रात के धुंधलेपन में हज़ारों या इससे भी ज्यादा जाट नदों और औरतों के बीच बैठ गये।

उनमें से एक चिल्लाया, ‘कौमी नारा !’ और हज़ारों गलों ने मिलकर जोश के साथ तीन बार चिल्लाकर कहा—‘बन्देमातरम !’ और फिर उन्होंने ‘भारतमाता की जय’ के नारे लगाये।

“यह सब ‘बन्देमातरम’ और ‘भारतमाता की जय’ किस लिए है ?” मैंने पूछा।

कोई उत्तर नहीं। पहले उन्होंने मुझे धूरकर देखा और फिर एक-

विरोध और जनता को भलाई होनी चाहिए। उसकी राय में मुठ्ठीभर उच्चवर्ग के आदमियों की ऐसी किसी भी संधि या समझौते का सच्चा और स्थायी मूल्य नहीं है जो जनता के हितों को दरगुजर करता है। कांग्रेस तो जनता के साथ है जिससे उसका सम्बन्ध है; क्योंकि सबसे अधिक जनता के हितों से ही उसका सम्बन्ध है। लेकिन कांग्रेस जानती है कि हिन्दू और मुस्लिम जनता साम्प्रदायिक तत्वों की ज्यादा परवा नहीं करती। उन्हें तो तात्कालिक और सतत आर्थिक सहायता चाहिए और उसे पाने के लिए राजनैतिक आजादी। इस विस्तृत आधार पर देश के उन सब तत्वों का सहयोग हो सकता है जो सामूहिक रूप में मानव-जाति का हित चाहते हैं और साम्राज्यवाद से छुटकारा चाहते हैं।

१० जनवरी १९३७।



राष्ट्रीय कांग्रेस, जैसा उसके नाम से पता चलता है, एक राष्ट्रीय संस्था है। उसका ध्येय हिन्दुस्तान के लिए राष्ट्रीय आजादी हासिल करना है। उसमें बहुत-सी ऐसी श्रेणियाँ और दल भी शामिल हैं, जिनके वास्तव में विरोधी सामाजिक हित हैं; लेकिन इस वक्त एक सामान्य राष्ट्रीय प्लेटफार्म उन्हें संगठित रख रहा है। पिछले सालों में कांग्रेस का मुकाबला समाजवादी कार्यक्रम की ओर हुआ है; लेकिन समाजवादी होने से वह बहुत दूर है।

निजी तौर पर मैं चाहूँगा कि कांग्रेस खूब आगे बढ़े और पूरा समाजवादी कार्यक्रम ग्रहण करले/ में यह भी मानता हूँ कि आज कांग्रेस में ऐसे बहुतसे दल हैं जो विचारों में बहुत पिछड़े हुए हैं और कांग्रेस को आगे बढ़ने से रोकते हैं। यह सब मानते हुए भी, मुझे जरा भी शक नहीं है कि हाल के सालों में कांग्रेस हिन्दुस्तान में कहीं अधिक युद्धशील संस्था रही है। मुझे उन आदमियों पर बड़ी हैसियत आती है जो खुद तो कुछ करते-कराते नहीं हैं और कांग्रेस पर दोष लगाते हैं कि वह युद्धशील नहीं है। हमारे बहुतसे तथाकथित समाजवादी युद्धशीलता को सिर्फ कहने तक ही या उसपर बड़-बड़कर बाने मारने तक ही सीमित रखते हैं। यह एक भारी खतरे की बात है।

उन कांग्रेसमैनों को जो मजदूरों के मामलों में दिलचस्पी रखते हैं, अपने काम का रास्ता इस प्रकार बनाना चाहिए: वे अलहदा-अलहदा मजदूर-संघों में काम करें और अपनी ही एक विचार-धारा और काम का कार्यक्रम बनाने में मजदूरों की मदद करें। वह कार्यक्रम जहाँतक हो, युद्धशील हो, चाहे कांग्रेस के कार्यक्रम से आगे हो। राष्ट्रीय कांग्रेस में, मजदूरों के कार्यक्रम से मेल रखते हुए आर्थिक-दिशा को रखने की कोशिश करनी चाहिए। अनिवार्यरूप से कांग्रेस का कार्यक्रम, जहाँतक विचारों का संबन्ध है, उतना आगे नहीं होगा जितना मजदूरों का कार्यक्रम होगा। लेकिन युद्धशील कार्रवाइयों में सहयोग रखना भी बिल्कुल संभव है।

सरकार की सरहदी-नीति ।

दो महीने से कुछ कम हुए ब्रिटिश सरकार ने स्पेन की सरकार और वहाँ के विद्रोहियों को एक संदेश भेजा था। कहा गया था कि वे दोनों हवाई जहाज से नागरिक आवादी पर बम न बरसायें। यह संदेश स्पेन में लड़ने वाले दोनों दलों के लिए भेजा गया था; लेकिन असल में उसका तात्कालिक कारण यह था कि वास्क मुल्क के कुछ क्रिस्वों पर बम बरसाये गये थे। ये बम अधिकतर जनरल फ्रैंको के मातहत जर्मनी और इटली के हवाई जहाजों ने बरसाये थे। कोई सालभर से, जबसे कि स्पेन में विद्रोह शुरु हुआ है और विदेशी ताकतों ने स्पेन पर हमला किया है, तबसे उस अभाग्य मुल्क में फामिस्ट मैनिफेस्टो ने जो नृशमनायें की हैं उनके हवाले मुनने-मुनने दुनिया परेशान होगई है। गर्नीका के खूबे शहर पर आग लगाने वाले बम बरसाये गये जिसमें आठसौ नागरिकों की जानें चली गई और शहर का बहूत बड़ा हिस्सा बरबाद हो गया। दुनिया के राष्ट्रों का यह खबर सुनकर भारी धक्का लगा।

ब्रिटिश सरकार ने इसकी मखारफ्त करने और नागरिकों दिखाने के लिए एक समाचार भेजा 'विदेशी सामर' से समाचार भेजना भर ही अब ब्रिटिश सरकार का सरह काम है। और 'पर भी' सभी उम्मेद खद हिन्दुस्तान की उत्तरी-पश्चिमी सरहद पर हवाई जहाज से बम बरसाये। जग की दर से मौजूद साम्राज्यवाद का अमला मुल्क और कायना दिखाने का यह एक अजीबानरीब और सर मुल्क सरह था।

एक ही चीज जो स्पेन के 'जग' बरसाए और खदखद है वह 'हिन्दुस्तान या उसकी सरहद के लिए' जैसे मुल्क सरह या सरह है और 'जग' उनका बाहें जो वृत्त हा पर भयानकता का भयानकता है वे और

दूसरे का मुँह नाकने लगे । दिमाई पढ़ता था कि वे मेरे मवाला करने में कुछ परेशान हो उठे हैं । मैंने मवाला रोडमार्ग—“कोलिंग, वे नारे लगाने में आसानी क्या मालूम है ?” फिर भी कोई नारा नहीं मिला । उस जगह के उपायों कावेम-कार्यकर्ता कुछ विचलित हो गये थे । उन्होंने हिम्मत करके सब नारों का नामी चार्ज : लेकिन मैंने उन्हें थोड़ासा नहीं दिया ।

“यह माता कौन है, जिसको आपने प्रणाम किया है और जिसकी जय के नारे लगाये हैं ?” मैंने फिर मवाला किया । वे फिर धुप और परेशान-ने हो गये । ऐसे अजीब मवाला उनमें कभी नहीं किये गये थे । सहज भाव में उन्होंने सब बातों को मान लिया था । जब उनमें नारे लगाने के लिए कला जाता था तब नारा लगा दीये । उन सब बातों के समझने की उन्होंने कभी काशिश नहीं की । कावेम-कार्यकर्ताओं ने नारे लगाने के लिए कला ना वे उच्च सीमा तक मका थे । वे तात्त्विक और पूरी ताकत लगाकर चिल्लाया था । वम, नारा प्रकटा करना चाहिए । इसमें उन्हें गूधी होनी थी और शायद इसमें उनके प्रतिद्वन्द्वियों का कुछ डर भी होता था ।

अब भी मैंने मवाला करना बन्द नहीं किया । तब परेशान करने के एक आदमी ने कहा, कि ‘माता’ माना जा सकता है ‘धरती’ नहीं है । उस बेचारे किमान का दिमाग धरती ही आर हो गया, जो उसका मज्जी मा है, भला करने और चाहनेवाली है ।

“कौनसी धरती ?” मैंने फिर पूछा । क्या आपके गाँव का धरती या पजाब की, या तमाम दुनिया की ? इस पर्वदा मवाला में वे और परेशान हुए । तब बहुतमें लगा ने चलाकर कहा ‘यह उस सब का मतलब आप ही समझाएँ । हम कुछ भी नहीं जानते और सारे बात समझना चाहते हैं ।

मैंने उन्हें बताया कि भारत क्या है । किस तरह वह उत्तर में कश्मीर और हिमालय में लेकर दक्षिण में लका तक फैला हुआ है । उसमें पजाब, बंगाल, बम्बई, मद्रास सब शामिल हैं । इस महाद्वीप में

लग जाता है। हम देख सकते हैं कि किस प्रकार इंग्लैण्ड के समर्थकों ने छोटे-छोटे हिस्सों और नेकनामी की परवाह न करके अतन्त्रता संग्राम के विद्रोहियों को मरद दी है और गूरुग में भाजी-नीति का समर्थन किया है। अंग्रेजों की विदेशी नीति में और बहुतेरे विचारों की जोशा नहीं ज्यादा विचार साम्राज्यवाद और सामिज्म के मन्ने संबंध बनाने रखने का होता है।

इस तरह हिन्दुस्तान की सरहद और उसके आगे के मुद्दों के बारे में सरकार सोचती है कि आगे होनेवाली लड़ाई का मोरना नहीं होगा और उसकी तमाम नीति लड़ाई के लिए अपनेको तालमबन्द बनाने की है। यह नीति सरहद की जानियों में शान्ति रखने और सहयोग की नहीं है। वह तो आश्रितकार आगे बढ़ने और अधिक-से-अधिक हिस्से पर काबू करने की है, जिसमें लड़ाई का मोरना उनके मौजूदा आधार में कुछ और आगे बढ़ जावे। उनके फ़ौजी विचार राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक बातों की दरगुजर करके राज्य को बढ़ाकर और इस तरह उमे हमलों से मह-फ़ूज बनाने की ही परिभाषा में चलते हैं। वास्तव में यह हंग किमी भी राज्य को अक्सर कमजोर बना देता है। हिन्दुस्तान में शेरफ़ौजी विभागों में भी हम फ़ौजी दिमाग़ को काम करते पाते हैं; क्योंकि एक शेरफ़ौजी आदमी सोचता है, और ठीक ही सोचता है, कि वह खुद विदेशी फ़ौज का उतना ही भेम्बर है जितना कि एक सिपाही।

इन्हीं सबसे सरहद में तयाकथित 'उग्र नीति' चली है; क्योंकि एक उग्र कार्रवाई के लिए यह बहाना काफ़ी अच्छा है जिसका फ़ायदा उठाया जाना चाहिए। इस बुनियाद को लेकर ही हमें सरहद पर और उसके पार की मौजूदा घटनाओं पर विचार करना चाहिए।

यह उग्र नीति लड़ाई की भारी तैयारी ही बन जाती है। क्योंकि भविष्यवाणी की गई है कि वह समय दूर नहीं है, जब महायुद्ध होगा। इस उग्र नीति की तो हम मुख़ालफ़त करते हैं, साथ ही लड़ाई की तैयारी के रूप में भी हम उसका विरोध करते हैं। कांग्रेस न कह दिया है कि हिन्दुस्तान साम्राज्यशाही लड़ाई में हिस्सा नहीं लेगा और कांग्रेस के इस

बचन और नीति पर हमें दृढ़ रहना चाहिए। किन्हीं ख्याली कारणों से नहीं; बल्कि हिन्दुस्तान के आदिमियों के ठोस और स्थायी हितों और उनकी आजादी के लिए हमें ऐसा करना चाहिए।

इस उग्र नीति का एक पहलू—साम्प्रदायिक—और है। जिस प्रकार साम्प्रदायिकता का कीड़ा साम्राज्यवाद से पोषण पाकर हमारे सार्वजनिक जीवन और हमारी आजादी की लड़ाई को कमजोर करता है और नुकसान पहुँचाता है, उसी तरह से यह उग्र नीति सरहदों में उस कीड़े को पैदा करती है और हिन्दुस्तान और उसके पड़ोसियों में नुस्तीबत पैदा करती है। सरहदों में ब्रिटेन की नीति सरहदों की जातिधर्मों को रिसवत देकर अपनी और मिलाने और फिर आतंकित करने की रही है। यह नीति तो मूर्खतापूर्ण है और उसका नाकामयाव होना जरूरी है। आजाद हिन्दुस्तान की नीति कभी भी उनके बारे में ऐसी नहीं होगी। काँग्रेस ने बार-बार कहा है कि अपने पड़ोसियों से उसका कौत्स भी कोई झगड़ा नहीं है और वह उनके साथ दोस्ताना और सहयोग का सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है। इस तरह ब्रिटिश-सरकार की उग्र नीति और हमारे इरादों में सीधा संघर्ष पैदा होता है और उससे नई समस्याएँ पैदा होती हैं, जिनका भविष्य में एक निकालना मुश्किल होगा। जहाँ तक हो सकता है, हमें ऐसा होने से रोकना चाहिए। इससे हमारे लिए जरूरी होता है कि अपने बुनियादी उद्देश्यों पर हम पक्के रहे और किसी भी दूसरी बात का अन्तर अपने ऊपर न होने दें।

मुझे पूरी उम्मीद है कि अगर हम दोस्ताना तरीके से मिलें, अगर हमको मिलने की आजादी हो, तो सरहदों की मुनीबत का आत्मनो हो सकता है। सिर्फ एक ही आदिमी जगह अबुलखण्डारखी, जिन से सरहदों में हर तरफ प्रेम किया जाता है, सरहदों की समस्या को तय कर सकते थे। लेकिन अंग्रेजों के इन्तजाम से यह अपने प्रान्त में घूम भी नहीं सकते। रात अबुलखण्डारखी को भी छोड़िए, मैं निश्चय के साथ कहता हूँ कि बर्मेन अगर समस्या को मुद्दाजाने की योगिता करती है तो उसे सामना करनी पड़ेगी। सरहदों की जातिधर्मों के सरदार जल्दी ही

सूचेंगे, अगर हम दोस्ताना तरीके से उनकी समस्या को देखें और साम्प्रदायिक जोग को वे दूर करें। जो इस जोग को बढ़ाते हैं, चाहे हिन्दुओं का चाहे मुसलमानों का, वे न तो हिन्दुओं के दोस्त हैं, न मुसलमानों के। सरहदी सूबे में कांग्रेस ने पहले ही इस बारे में अच्छा काम किया है और यह ध्यान देने की बात है कि हाल की मुसोबत ज्यादातर बन्नू जिले में है, जहां पर कि बदकिस्मती से कांग्रेस-संस्था कमजोर है। सरहदी सूबे के कांग्रेस के नेता डा० खान साहब ने पहले ही से एक साफ़ और बहादुराना रास्ता दिखाया है। मुझे यकीन है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों उसपर चलेंगे। यह हिन्दू या मुसलमानों का सवाल नहीं है, यह हमारे गौरव और नाम का सवाल है। हम किसी धर्म को माननेवाले हों, यह हमारी बुद्धिमानी और अच्छी भावनाओं का और हिन्दुस्तान की आजादी का सवाल है।

२२ जून १९३७।

उचित दृष्टिकोण

छ: सूत्रों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल कायम हो जाने में हिन्दुस्तान के गान-शोकन में भरे और गाननानुकूल वायुमण्डल में एक ताजा हवा की लहर आ गई है। नई-नई आशाएँ उठ खड़ी हुई हैं और जनता की आँखों के सामने आशाओं में भरे सपने चक्कर लगाने लगे हैं। कम-से-कम फ़िल्ड-हाल तो हम कुछ ज्यादा आजादी के साथ साँस ले रहे हैं। लेकिन हमारा काम अब कहीं ज्यादा जटिल है और खतरों और कठिनाइयाँ क्रम-क्रम पर हमें परेशान कर देती हैं। हमें ऐसा भ्रम हो सकता है कि ताकत हमारे हाथ में है, जब कि असल ताकत हमारी पहुँच के बाहर है और हम गलत भी चल सकते हैं। लेकिन लोगों की निगाहों में जिम्मेदारी तो हमारी है। अगर हम उसे उनके सर्वोपलब्ध नहीं पूरा कर सकते, अगर उनकी आशाएँ पूरी नहीं होंगी और सपने अशुभ रह जाते हैं, तो भ्रम का बोझ हमारा भी होगा। कठिनाई तो यह है कि स्थिति में स्वाभाविक विरोधी बातें हैं। हिन्दुस्तान की समस्याएँ बड़ी हैं, जिनका प्रभावशाली और पूरा-पूरा हल मिलना चाहिए और वह मौजूदा हालातों में हमारी ताकत में नहीं है। हमें ठीक दृष्टिकोण को हमेशा सामने रखना है। कांग्रेस का ध्येय, हिन्दुस्तान की आजादी, लोगों की गरीबी को खत्म करना, इन बातों को भी हम आँखों में ओझल नहीं कर सकते। साथ ही हमें छोटी-छोटी बातों के लिए भी परिश्रम करना है, जिनसे जनता को तात्कालिक राहत मिले। इन दोनों बातों को सामने रख कर हमें एकसाथ काम करना है।

अगर हमें अपने इन कठिन कार्य में सफलता पानी है, तो जरूरी होगा कि हम अपने लोगों में श्रद्धा रखें, उनके साथ खुलकर व्यवहार

साधना है, वेग कि हमें चाहिए, जो हमें देश-प्राप्त को हमें एक खास म
 र्णना चाहिए । देश ही में जो हमारी हिन्दुस्तान की दुर्लभता सफल
 भेजो गई है, सब हमें नान की पान दिखाने वाली है । हमारे
 साधनों का सम्बोध किस प्रकार सामान्यकारी दिनों का बनाने के लिए
 किया जाता है । नवतक हम सार्क व हमें नवतक हिन्दुस्तान का
 आंशक बनना रहेगा, बहना रहेगा । कही-कहीव किता जाने ही हमें
 नदरें भी हो सकती है । हमारे दिने नदी, वनिक सामान्यवाद के,
 जिसको हम हिन्दुस्तान में हम देना चाहते हैं, दिनों के लिए । हमें यह
 कायेशियों को हिन्दुस्तान में जो कुछ होता है, उनके अनुरोधों पर सफलियों
 को नहीं भूलना चाहिए । हमारे नवीनता का इन वरी यथाशास में कोई
 शोभा यन्त्र नहीं है, लेकिन फिर भी यथार्थ रूप में वे उनके यन्त्र
 में आ सकते हैं और हमारे यन्त्र प्रयत्न सब करने हैं ।

(३)

कांग्रेस ने नान बार नानयन स्वतन्त्रता । नवीनता का स्वतन्त्र श्वासी-
 करण, स्वतन्त्र सम्बन्ध और सम्बन्ध, स्वतन्त्र वम और प्राथमिक और
 प्राथमिक स्वतन्त्रता । हमारे 'दया' है । 'कम' प्रवधान-कृत अधिकारा
 और आन्दोलन और हिन्दुस्तानिया का मताने का लिए । नवीनता कानून
 उन्मत्त करने को हमने नानदा को है और अपने हाथकम में रखा है कि
 इन सब अधिकारा और कानूनो का यन्त्र करने का लिए जा कुछ किया
 जा सकता है, हम करणें । म्वा में बद यत्न करने में हम नीति में कोई
 अन्तर नहीं पड़ता और वास्तव में हम पूरा करने के लिए बहुत कुछ
 पहले ही में किया जा चुका है । राजनैतिक कैदी छूट गये हैं, बहुतसी
 संस्थाओं पर में जञ्जी हट गई है और प्रेमा की जमानते लोटादी गई है ।
 यह सच है कि इस बारे में अभी कुछ और जाना बाकी है, लेकिन यह
 इसलिए नहीं है कि कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल और आगे कदम बढाना नहीं
 चाहते; वनिक बहुत सी कठिनाइयों के कारण है । मुझे यकीन है कि इस
 काम को जल्दी ही पूरा करना मुमकिन होगा और तमाम दमन करने-
 वाले, सैरमामूली प्रान्तीय कानूनों को रद्द कराकर हम अपनी प्रतिज्ञा

उनके जैसे करोड़ों किसान हैं जिनकी उन जैसी ही समस्यायें हैं, उन्हींकीन्ती मुश्किलें और बोझ, वैसी ही कुचलनेवाली गरीबी और आफ़तें हैं। यही महादेग हिन्दुस्तान उन सबके लिए ‘भारतमाता’ है। जो उसमें रहते हैं और जो उसके बच्चे हैं। भारतमाता कोई सुन्दर और बेवस असहाय नारी नहीं है—जिसके धरती तक लटकनेवाले लम्बे-लम्बे बाल हों, जैसा अक्षर कल्पित तस्वीरों में दिखलाया जाता है।

‘भारतमाता की जय !’ यह जय बोलकर हमने किसकी जय बोली ? उस कल्पित स्त्री की नहीं जो कहीं भी नहीं है। तब क्या यह जय हिन्दुस्तान के पहाड़ों, नदियों, रेगिस्तानों, पेड़ों, पत्थरों की बोली जाती है ?

“नहीं,” उन्होंने जवाब दिया। लेकिन कोई ठीक उत्तर वे मुझे न दे सके।

“निश्चय ही हम जय उन लोगों की बोलते हैं जो भारत में रहते हैं—उन करोड़ों आदमियों की जो उसके गाँवों और नगरों में बसते हैं।” मैंने उन्हें बताया। इस जवाब से उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई और उन्होंने अनुभव किया कि जवाब ठीक भी है।

“ये आदमी कौन हैं ? निश्चय ही आप और आपके भाई। इसलिए जब आप ‘भारतमाता की जय’ बोलते हैं, तो वह अपने और हिन्दुस्तान-भर के अपने भाई-बहनों की ही जय बोलते हैं। याद रखिए, भारतमाता आप ही है और यह आप अपनी ही जय बोलते हैं।”

ध्यान से उन्होंने मुना। प्रकाश की उज्ज्वल रेखा उनके भोले-भाले चेहरों पर उदय होती हुई दिग्विदी दी। यह ज्ञान उनके लिए एक विचित्र था कि वह नारा, जिने वे इनने दिनों में लगा रहे हैं, उन्हींके लिए था। हाँ, रोहनक ज़िले के गाँव के उन्ही देवारे जाट-किसानों के लिए। यह उन्हींकी जय थी। तब आरए. तब एक बार फिर मिलकर पुकारें—
‘भारतमाता की जय !’

तब हम अन्धकार में दिल्ली की ओर बढ़े। रेल भिगी और उसके साथ सूब आराम भी।

को पूरी करेंगे। इस बीच जनता को उन खास कठिनाइयों को याद रखना चाहिए जिनमें होकर कांग्रेस के वजीरों को काम करना पड़ रहा है, और ऐसे कामों के लिए जिनकी जिम्मेदारी उनकी नहीं है उनपर दोष लगाने के इच्छुक नहीं होना चाहिए।

नागरिक स्वतंत्रता हमारे लिए सिर्फ हवाई सिद्धान्त या पवित्र इच्छा ही नहीं है; बल्कि एक ऐसी चीज है जिसे हम एक राष्ट्र को व्यवस्थित उन्नति और प्रगति के लिए आवश्यक समझते हैं। यह एक ऐसी समस्या है जिसके बारे में लोगों में मतभेद है। उसे सुलझाने का सभ्य और अहिंसात्मक तरीका है। विरोधी मत को जबरदस्ती कुचल देना और उसे अपने को जाहिर न करने देना, क्योंकि हम उसे नापसन्द करते हैं, तो लाजिमी तौर पर ऐसा ही है जैसे कि दुश्मन को खोपड़ी फोड़ देना: क्योंकि हम उसे बुरा समझते हैं। उससे सफलता नहीं मिलती। फूटी खोपड़ी का आदमी तो गिरकर मर सकता है; लेकिन दमन किये गये मन या विचार यों अकस्मान खत्म नहीं हो जाते और ज्यों-ज्यों उन्हें दबाने और कुचलने की कोशिश की जाती है, वे और बरकरी करने जाते हैं। ऐसे उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। लम्बे

भी भारी जिम्मेदारियाँ होती हैं और वे जहाँपर काम की जरूरत होती है, वहाँ पर किसी सवाल के तत्त्वज्ञान पर बहस नहीं कर सकतीं। हमारी इस अधूरी दुनिया में बड़ी बुराई के मामले हमें छोटी बुराई को स्वीकार करना पड़ता है।

हमारे लिए जिस कार्यक्रम को लेकर हम चले हैं उसीको क्रियाशील बनाने का ही सवाल नहीं है। सवाल तक पहुँचने का हमारा तरीका ही मनोवैज्ञानिक रूप से भिन्न होना चाहिए। वह पुलिसमैन का तरीका नहीं होसकता जो कि हिन्दुस्तान में अंग्रेज सरकार का मशहूर है, यानी बल, हिंसा और दबाव का तरीका। कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों को चाहिए कि जहाँ-तक सम्भव हो, वे तमाम दबाव की कार्रवाइयों को छोड़ दें और अपने आलोचकों को अपने कामों में जीतने की कोशिश करें और जहाँ सम्भव हो, उन्हें अपने निजी संपर्क में जीतें। अगर अपने आलोचक को या दुश्मन को बदलने में उन्हें कामयाबी नहीं मिलनी, तो भी वे उसे ऐसा तो बना ही देंगे कि वह किसीको नुकसान न पहुँचा सके और तब जनता की हमदर्दी, जो कि अनिवार्यरूप में सरकारों की कार्रवाई में दुःखी आदमी के साथ होती है, उसके साथ नहीं होगी। वे जनता को अपनी ओर कर लेंगे और इस तरह ऐसा वायुमण्डल पैदा कर देंगे जो गलत कार्रवाइयों के मुआफ़िक नहीं होना।

लेकिन इस तरीके और दबाव की कार्रवाई को छोड़ने की इच्छा रखने के बावजूद ऐसे मौके आ सकते हैं जब कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों को ऐसा करना ही पड़ता है। कोई भी सरकार हिंसा और साम्प्रदायिक झगड़ों के प्रचार को नहीं बढ़ावा दे सकती। अगर बदकिस्मती से ऐसा प्रचार होता है तो मामूली कानून की दबाव की क्रियाओं का सहारा लेकर उसे ठीक रास्ते लगाना होता है। हमारा विश्वास है कि पुलिस की निगरानी या किताबों और अखबारों की ज़रूरी नहीं होनी चाहिए और मतों और विचारों के व्यक्तिकरण के लिए अधिक-से-अधिक आजादी दी जानी चाहिए। जिस तरीके से ब्रिटिश-सरकार की नीति ने हमें प्रगतिशील साहित्य से दूसरों में अलहदा कर दिया है, उसे सब

जिनमें जनता में जोश भरता था। उस तरह के जिन वायुमण्डल को सरकार ठीक करना चाहती है, उसीको उल्टा भारी बना देती है।

कांग्रेस ने ठीक ही इनमें भिन्न नीति प्रयोग की है; एंथॉपिक वह जनता की समस्याओं में आगे बढ़ना चाहती है और इन बहादुर नोजवानों को अपनी ओर मिलाता चाहती है और ऐसा वायुमण्डल पैदा करना चाहती है जो कांग्रेस के कार्यक्रम के मुआफिक हो। उस मुआफिक वायुमण्डल में गलत प्रवृत्तियाँ खत्म होजायेंगी। हिन्दुस्तान की राजनीति में हर कोई इस बात को जानता है कि आतंकवाद हिन्दुस्तान के लिए पुरानी बात होगई है। वह और जल्दी खत्म होजाता, अगर बंगाल में सरकार की जैसी नीति रही, वह न रही होती। हिंसा का खाला हिंसा से नहीं होता; बल्कि भिन्न तरीके से, हिंसा करने के कारणों को दूर करने से, होता है।

हमारे इन साधियों पर, जो इनने बरनों की जेल की जिन्दगी बिताकर छूटे हैं, एक खाम जिम्मेदारों हैं कि वे कांग्रेस की नीति के प्रति सच्चे रहें और कांग्रेस के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए काम करें। उस नीति का आधार अहिंसा है और उसी मजबूत नींव पर कांग्रेस की ऊँची इमारत खड़ी हुई है। यह जरूरी है कि कांग्रेसमें उन बात को याद रखें; क्योंकि वह अबतक जितनी महत्वपूर्ण रही है, उनमें भी अधिक महत्वपूर्ण वह आज है। बेकार की बातें जो हिंसा को और मान्य-दायिक झगड़ों को प्रोत्साहन देती हैं, वे मौजूदा अवस्था में खासतौर से हानिकारक हैं और वे कांग्रेस के ध्येय को ही भारी नुकसान पहुँचा सकती हैं और कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों को परेशान कर सकती हैं। राजनीति में अब हम बच्चे ही नहीं हैं, अब हम आदमी की अवस्था में आगये हैं और हमारे सिर पर बड़ा काम है, मुकाबिला करने के लिए बड़े-बड़े झगड़े हैं, दूर करने के लिए बड़ी-बड़ी मुश्किलें हैं। आदमियों की तरह हमें हिम्मत और गौरव और अनुशासन के साथ उनका मुकाबिला करना चाहिए। हम केवल एक बड़ी ऐसी संस्था द्वारा ही अपनी समस्याओं का मुकाबिला कर सकते हैं जिसके पीछे जनता की स्वीकृति हो। और जनता की बड़ी-बड़ी संस्थाएँ अहिंसात्मक तरीकों से ही बनती हैं।

(५)

हिन्दुस्तान की दुनियादी समस्यायें किसानों और मजदूरों के सम्बन्ध में हैं। इन दोनों में किसानों की समस्या बहुत महत्वपूर्ण है। कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों ने इसे सुलझाने की पहले से ही कोशिश शुरू कर दी है और जनता को अत्याचारी राहत देने के लिए शासन-सम्बन्धी हुकम जारी होगये हैं। इस मामूली बात से भी हमारे किसानों को बड़ी खुशी हुई है, और आशायें हुई हैं, और अब वे बड़ी-बड़ी तब्दीलियों के लिए आँख लगाये बैठे हैं। इस स्वर्ग के आने की आशा में कुछ खतरा है; क्योंकि ऐसा तात्कालिक स्वर्ग अभी है नहीं। कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल दुनिया में अच्छी-से-अच्छी इच्छा लेकर भी सामाजिक व्यवस्था और मौजूदा आर्थिक पद्धति को बदलने के अयोग्य हैं। सैकड़ों तरीकों से उनके हाथ-पैर बंधे हैं और उनपर रोक-थाम हैं और उन्हें एक तंग दायरे में चलना पड़ता है। वास्तव में नये विधान की मुखालफत करने का हमारा यही खास कारण था, और है। इसलिए अपने आदमियों के साथ हमें विलकुल खुला होना चाहिए और उन्हें बता देना चाहिए कि मौजूदा हालतों में हम क्या कर सकते हैं और क्या नहीं कर सकते हैं। काम न कर सकने की हमारी असमर्थता ही इस बात की अवदस्त दलील देगी कि बड़ी-बड़ी तब्दीली होने की जरूरत है और उसीसे हमें असली ताकत मिलेगी।

लेकिन इस बीच में जहाँतक किसानों को हम राहत दे सकते हैं, हमें देनी होगी। इस कठिन परीक्षा का हमें हिम्मत से सामना करना होगा। स्थापित स्वार्थों से और हमारे रास्ते में रुकावट डालनेवालों से हमें नहीं डरना चाहिए। कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों की सफलता तो तभी मानी जायगी जब वे किसानों के कानूनों को बदल देंगे और किसानों को राहत देंगे। कानूनों में यह तब्दीली असेम्बलियों और कीसिलों द्वारा होगी; लेकिन अगर असेम्बलियों और कीसिलों के कांग्रेसी सदस्य अपने हलकों के निकट-सम्पर्क में रहें और अपनी नीति वहाँके किसानों को बताते रहें तो उस तब्दीली का मूल्य कहीं ज्यादा होगा। असेम्बलियों और कीसिलों की कांग्रेस-पाटियों को भी कांग्रेस-कमेटियों और आम-

तौर पर जनमत के साथ सम्पर्क रखना चाहिए। उस युद्ध-परीक्षे में जनता का सहयोग मिलेगा और स्वयं ही अमर्त्यताओं में भी सम्पर्क रहेगा। इस तरह जनता ही जनतन्त्रिय उग में शिक्षा मिलेगी; और उसीसे अनुशासन रहेगा।

धरती-मन्वन्तो कानून में नवरीली होने में हमारे किसानों की राहत मिलेगी; लेकिन हमारा भय बहुत बड़ा है और उसके लिए जरूरत है कि किसानों की संगठित ताकत बड़े। अपनी ताकत में ही वे आखिर अपने ऊपर आलू स्यापित म्बायों के आगे बढ़ सकते हैं और उनका मुकाबिला कर सकते हैं। ऊपर से शरीर किसानों को दिया गया बरदान वाद में छीना जा सकता है, और ऐसे अच्छे कानून का क्या मूल्य कि जिसको चालू ही न किया जा सके? इस तरह जरूरी है कि गाँवों की कांग्रेस-कमेटियों में किसानों का अच्छी तरह से संगठन हो।

(६)

मजदूरों के बारे में अभी तक कांग्रेस ने कोई विस्तृत कार्यक्रम तैयार नहीं किया है; क्योंकि हिन्दुस्तान में किसानों का मवाल ही सबसे अहन है। कराँची के प्रस्ताव और चुनाव की विजय में मजदूरों के बारे में कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त बनाये गये हैं। मजदूरों का मध बनाने और हड़-ताल करने का अधिकार स्वीकार कर लिया गया है और 'जीवन वेतन' का सिद्धान्त पसन्द किया गया है। हाल ही में बम्बई की सरकार ने मजदूरों के बारे में जो नीति बनाई है, उसे कार्य-मिति ने पसन्द किया है। वह नीति अन्तिम या आदर्श नीति नहीं है, लेकिन मौजूदा हालातों में और थोड़े वक्त में जो कुछ किया जा सकता है, उसका प्रतिनिधित्व वह करती है। मुझे शक नहीं कि अगर इस नीति को चालू किया जाता है तो उससे मजदूरों को राहत मिलेगी और उन्हें संगठित होने की ताकत मिलेगी, जो कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। इस कार्यक्रम और नीति की बुनियाद ही मजदूरों की संस्थाओं को मजबूत बनाना है। बंबई की सरकार ने अपनी मजदूर-नीति में कहा है कि "उसका विश्वास है कि असेम्बलियों और कौंसिलों का कोई भी कार्यक्रम मजदूरों

हिन्दुस्तान की समस्यायें?

पहला सवाल है—

“क्या आप बता सकेंगे कि ‘हिन्दुस्तान के लिए मुकम्मिल आजादी’ से क्या मतलब है ?”

कांग्रेस-विधान की पहली धारा में यह वाक्य आया है। आपका शायद उसीसे मतलब है। मैं जानता हूँ कि यहाँ उमरता मतलब सिर्फ राजनैतिक पहलू से है, आर्थिक में नहीं। लेकिन सामूहिक रूप में तो अब कांग्रेस ने आर्थिक-दृष्टि को भी महँजजर रखना और आर्थिक नीति को तरक्की देना शुरू कर दिया है और हममें से कुछ, मैं भी, राजनैतिक स्वतन्त्रता को और दृष्टियों की बनिवस्त कही ज्यादा आर्थिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से सोचने लगे हैं। साफ़ तौर से आर्थिक स्वतंत्रता में राजनैतिक स्वतन्त्रता भी शामिल है। लेकिन अगर इस जुमले का अर्थ बिलकुल राजनैतिक मानी में लगाया जाय, जैसे कि यह जुमला कांग्रेस-विधान में इस्तमाल किया गया है, तो उसका अर्थ होता है—राष्ट्रीय स्वतंत्रता। स्वतन्त्रता सिर्फ घरेलू ही नहीं, बल्कि विदेशी, अर्थिक और फ़ौजी वगैरा भी; यानी फ़ौज पर और विदेशी मामलों पर भी काबू होना। दूसरे शब्दों में, उसमें वे सब चीज़ें शामिल हैं जो अक्सर राष्ट्रीय स्वतंत्रता में आती हैं। इसका ज़रूरी तौर पर यह मतलब नहीं है कि हम इस बात पर जोर देते हैं कि हिन्दुस्तान को अलग कर लिया जाय या हिन्दुस्तान को उन सम्बन्धों से अलहदा कर लिया जाय जो इंग्लैंड या दूसरे मुल्कों के साथ

१ इंग्लैंड के ‘कंसोलियेशन ग्रुप’ के अन्तर्गत ४ फरवरी १९३६ को लन्दन में हुई मीटिंग के अध्यक्ष मि० कार्लहीय द्वारा पूछे गये सवालों के जवाब।

कांग्रेस-कमेटी दूसरी कांग्रेस कमेटी की ही निन्दा करती हो। मन्त्रिमण्डल कांग्रेस ने कायम किये हैं, कांग्रेस उनका खात्मा भी चाहे जब कर सकती है। अगर मन्त्रिमण्डल ठीक नहीं हैं, तो हमें उनका अंत कर देना चाहिए या उनको सुधार देना चाहिए। अगर हम वैसा नहीं कर सकते, तो हमें जैसे वे चलते हैं, वैसे उन्हें बर्दाश्त करना चाहिए। इसलिए निन्दा करना तो बाहर की बात होजाती है। अगर किसी भी समय हम सोचते हैं कि मन्त्रिमण्डलों का अन्त होजाना चाहिए, तो विधान के मूताबिक हमें ठीक कार्रवाई करके उनका अन्त कर देना चाहिए।

दूसरी तरफ़, कांग्रेस कमेटियों और कांग्रेसमनों का चुप और कांग्रेसी सरकारों के कामों का मूक दर्शकभर रहना भी उतना ही वाहियात है। किसानों की समस्या जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर असेम्बलियाँ और कांसिलें विचार करेंगी और हम सबको उनमें दिलचस्पी है और होनी चाहिए। कांग्रेस कमेटियों को उनपर चर्चा करने का और अपने विचारों और सिफ़ारिशों को और जनता की मांगों को अपनी प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटियों को भेजने का पूरा अधिकार है। यह तरीका असेम्बलियों, कांसिलों और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों को प्रायदेमन्द साबित होना चाहिए। मित्रतापूर्वक की गई आलोचनाओं और विचारों का हमेशा स्वागत होना चाहिए। मुख्य चीज तो मंत्री और उस समस्या तक पहुँचने का तरीका है। अगर हम कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों को परेशान करते हैं और उनके रास्ते में मुसीबतें पैदा करते हैं तो इससे हम अपनेको ही परेशान करेंगे। एक ही लक्ष्य के हम सब सिपाही हैं, और एक ही महान् कार्य में हम सब साथी हैं, और हम चाहे मन्त्री हों, या गाँव के मजूर, हमें एक-दूसरे के साथ सहयोग की भावना से व्यवहार करना चाहिए, एक-दूसरे को मदद करने की इच्छा करनी चाहिए, एक-दूसरे का रास्ता नहीं रोकना चाहिए। हाँ, रहना हमेशा सतर्क और तैयार चाहिए। खुशी से फूलना हमें नहीं चाहिए, जिससे हमारी सार्वजनिक कार्रवाइयाँ ही खत्म होजायें और धीरे-धीरे हमारे आन्दोलन की आत्मा ही कुचल जाय। यही भावना और उससे जो सार्वजनिक कार्रवाइयाँ निकलती हैं, वे महत्वपूर्ण हैं; क्योंकि

मिहने चलते ही हमें आगे बढ़कर अपने श्रेष्ठ लोक पद्धतों की प्रतिष्ठा मिलनी है और उसी प्रतिष्ठा पर हम अपना राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की आधार रखी कर सकते हैं। अगर उस भावना की कीमत पर हमें छोटे छोटे कापरे होने हों, तो हमें उन कापरों की परवा नहीं करनी चाहिए।

हमारा उद्देश्य राष्ट्रीय आजादी और एक प्रजातन्त्रीय राज्य पाने का है। प्रजातन्त्र स्वतन्त्रता है, लेकिन वह अनुशासन भी है। इसलिए अपने आदर्शों में हमें प्रजातन्त्र की आजादी और अनुशासन दोनों पैदा करने चाहिए।

३० अगस्त १९३७

देशी राज्य

हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड की हाल ही की घटनाओं ने यह साफ़ कर दिया है कि वहाँकी प्रतिगामी ताकतें हिन्दुस्तान की आजादी को रोकने या उसमें देर करने के लिए आपस में मिल रही हैं। इन ताकतों ने कोशिश की है कि हमारे आजादी के आन्दोलन को दबा दें और 'व्हाइट पेपर' तो स्थापित स्वायत्तों के अधिकार को ही मजबूत करने की एक कोशिश है। सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण चीज़ देशी नरेशों का एकदम प्रतिगामी रुख और सरकार ने उन्हें मिली मदद है।

यह अतिशय है कि आजाद हिन्दुस्तान एक फेडरेशन होगा; लेकिन यह बिल्कुल निश्चित है कि 'व्हाइट पेपर' से दिये हुए फेडरेशन में आजादी-वादी नरेशों की नयी 'मिथ सक्ती' इस फेडरेशन का मजबूत को निकरें हिन्दुस्तान की सरकारों की रोकना और उन्हें मजबूत तथा नरेश-द्वारा पद-विहीन में होने लकड़ देना है। इस फेडरेशन में सरकारों को आजादी का नाम एकदम नरेश-वादी से उबरना है फेडरेशन के पद-विहीन में कर 'ये' शर्तें

इसलिए हमारे मन में यह सवाल आता है कि हमारे देश में हमारे ही उन नरेशों को जो हिन्दुस्तान में एकदम फेडरेशन की शर्तों को मजबूत करने का हित और मजबूत करना चाहते हैं कि हमारे देश में फेडरेशन के पद-विहीन में नरेशों की मदद से आजादी का हित जिसका मजबूत है 'ये' शर्तें उबरना है 'ये' शर्तें में नरेशों को और एक प्रत्यक्ष-रूप में नरेशों का नाम 'ये' शर्तें

१ ब्यावर में हुई राजपूताना स्टेट्स पीपल्स कन्वेंशन के लिए दिया गया सन्देश।

राज्यों की पद्धति, जैसी कि वह आज है, समूल नष्ट हो जानी चाहिए ।

आपकी कल्पना आजकल के बहुत-से अहम मसलों पर, जैसे स्टेट्स प्रोटेक्शन बिल और दमनपर, जो देशी राज्यों में किया जा रहा है, विचार करेगी । आपके नामने ये मसले बड़े हैं; लेकिन जो प्रणाली आज चल रही है, आखिर उसमें ये पैदा हुए हैं । इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि आप अपना लक्ष्य स्पष्ट और निष्पक्ष बनायेंगे और उसके मूलाधिक आपका कार्य-क्रम होगा ।

२९ दिसम्बर १९३३.

देशी राज्यों में अधिकारों की लड़ाई

हिन्दुस्तान में कोई छः नौ रिपब्लिक्स हैं। कुछ बड़ी हैं, कुछ छोटी, और कुछ इतनी छोटी कि नक्शों पर उन्हें दिखाया भी नहीं जा सकता। वे एक-दूसरी से बहुत भिन्न हैं। कुछ ने औद्योगिक और तालीमी तरक्की की है; और कुछ के राजा और मन्त्री बड़े लायक हैं। फिर भी उनमें से ज्यादातर में प्रतिक्रिया हो रही है और कभी-कभी गोटों और क्लील गणनों की अपेक्षितता और मनमानी वहाँ बँ-रोक चलती है; लेकिन राजा चाहे अन्धरा हो या बुरा मंत्री चाहे योग्य हो या अपयोग्य, दोष का उसमें राज्य की वृद्धि का है। यह वृद्धि दुर्भाग्यवश से उठ गई है और इससे अनेकानेक देश ही लड़ाई लड़ते हैं। जब ही हिन्दुस्तान में भी एक नए राजा, चाहे वह उसके अन्धरा हो या बुरा मंत्री चाहे योग्य हो या अपयोग्य, दोष का उसमें राज्य की वृद्धि का है। यह वृद्धि दुर्भाग्यवश से उठ गई है और इससे अनेकानेक देश ही लड़ाई लड़ते हैं।

उत्तरा लें। भारत-सरकार का राजनैतिक-विभाग बाजे के तारों पर उंगुली फेरता है और उसकी तानपर ये पुतलियाँ नाचती हैं। स्थिति का मालिक लोकल रेजीडेंट है और वाद का रवैया यह रहा है कि सरकारी अफसर ही रियासतों के राजाओं के मन्त्री मुर्कारि किये जाते हैं। अगर यही आज्ञादी है, तो यह जानना बड़े मजे की चीज होगी कि बुरी-से-बुरी गुलामी और उसमें क्या फर्क है ?

रियासतों में आज्ञादी नहीं है और न होनेवाली है; क्योंकि भौगोलिक रूप में वह नामुमकिन है और वह हिन्दुस्तान के संयुक्त और आज्ञाद होने के विचार के एकदम खिलाफ है, और बड़ी रियासतों के लिए यह विचारणीय बात है और उचित है कि उन्हें फेडरेशन में ज्यादा-से-ज्यादा स्वायत्त मिटे। लेकिन हिन्दुस्तान का उन्हें मुख्य अंग रहना पड़ेगा और सामान्य कृतियों के बड़े मामलों पर एक प्रजातन्त्रीय फेडरल केन्द्र का अधिकार रहेगा। अपने राज्य के भीतर उन्हें अनन्यदायी सरकार मिल जायगी।

यह माफ है कि रियासतों की समस्या अत्यन्त ही जटिल हो जाती, अगर हमें हमारे प्रजा और राजा का ही बोझ, बहुतेरे राजों की आज्ञादी ही के के राजा का मध्य होने, अगर मध्य होने का उनका विचार हाजिर हो है, तो राज में जिन पहलु पर जल्दी ही के अपने विचार बदल देने, ऐसा न करने में तुम्हारे स्थिति खचने में यह जायगी और सब एक ही रास्ता रहेगा कि वे राज्य में लड़ें। वह कर्षक और जुद्ध-जुद्ध प्रजा-समूहों का मध्य की अंतर्गत अन्वेषण का अर्थ है कि राजा अदानी प्रजा का मध्य के और नियुक्तों से नियंत्रण प्रकृतिक कारणों के। उन्हें समझ लेना चाहें कि ऐसा न करने में अगर तुम्हारे राजों के राजों पर भी तुम्हारे प्रजा के अदानी नियंत्रण में रहेगा, तब तुम्हारे अंतर्गत में तुम्हारे और तुम्हारे प्रजा के बीच एक मध्यम हीनता और सबी होजायगी और सब दोनो में समझौता होना बेहद अधिकतर जायायगा। राजों में अदानी में हीनता का अर्थ है बहुतेरी सरकारें उदय के कारण 'सबूत' रूप में और जहाँ मुक्त उठ गये हुए हैं। अब भी हम अदानी राज्यों में सबकी को अन्वेषण रूप में लें हैं। विधायक के मध्य यह करने के कारण किसी

पैगम्बर की ज़रूरत नहीं है कि हिन्दुस्तान की रियासतों की पद्धति की अब ख़ैर नहीं है। अंग्रेजी सरकार की भी, जो अबतक उन्हें बचाती रही है, ख़ैर नहीं है। राजाओं के लिए अक्लमन्दी की बात तो यह है कि वे अपनी प्रजा का साथ दें और उनकी नई आजादी में हिस्सा बँटाएँ, बजाय इसके कि वे अत्याचारी और बुरे राजा बने और उनका राज्य भी डावाँडोल हालत में रहे। इसके खिलाफ़ वे प्रजा के साथ एक बड़ी ज़म्हूरियत कायम करें और समान नागरिक बनें।

कुछ रियासतों के राजाओं ने इस बात को महसूस किया है और ठीक दिशा में उन्होंने कुछ इतम बढ़ाये हैं। एक मामूली रियासत के सरदार और के राजा ने अपनी अक्लमन्दी में अपनी प्रजा को जिम्मेदार सरकार देकर नाम कमाया है। ऐसा करने में उनकी धान बढ़ी है और उनकी बाह-बाह हुई है।

लेकिन बदकिस्मती में राजाओं में से ज्यादातर अपने पुराने डरों पर चले रहे हैं, और उनके बदलने के कोई चिन्ह भी दिखाई नहीं देते। वे तो इतिहास की इस बात को दावाग दिखाने हैं कि अगर किसी जमान का अपना उद्देश्य पूरा हो गया है और दुनियाभर को उसकी ज़रूरत नहीं रही है तो वह नष्ट हो जाती है और उसकी चतुर्गई और नाक़त सब ख़त्म हो जाती है। बदलनी हुई हालतों के मुताबिक वह अपनेको नहीं बना सकती। पतनान्मुख चीज़ को पकड़े रहने की बेकार कोशिश में जो थोड़ा-बहुत उसके पास रह सकता था, उसे भी वह खा बैठती है। अंग्रेजी शासक-वर्ग का दौर बड़ा लम्बा और शासदार रहा है और तमान उन्नीसवीं सदी और उसके बाद उसने मार्गे दुनिया पर शासन किया है। फिर भी आज हम उन्हें कमजोर और कमअकल पाने हैं। लगातार सोचने या काम करने की ताकत उनमें नहीं है। वे कुछ स्थापित स्वार्थों पर अधिकार बनाये रखने की बेहद कोशिश करने दिखाई देने हैं। दुनिया में वे अपना दर्जा मिट्टी में मिला रहे हैं और अपने राज्य की शासदार इमान्त को चकनाचूर कर रहे हैं। उन जमाना के साथ भी यही बात है जो अपना काम पूरा कर चुकी है और जिनकी उपयोगिता ख़त्म हो चुकी है।

साफ़ तौर से नामुमकिन है कि लड़ाई बस कुछ रियासतों और कांग्रेस तक ही रहे और साथ ही प्रान्तीय शासन भी चलता रहे, जिसमें ब्रिटिश-सत्ता के साथ कुछ सहकारिता भी रहे। अगह यह अहम लड़ाई ही है, तो उसका असर हिन्दुस्तान के दूर-से-दूर कोनों तक फैलेगा और इस या उस रियासत तक ही सीमित नहीं रहेगा; बल्कि ब्रिटिश सत्ता को एक-दम उड़ा देने तक सीमित होगा।

आज उस झगड़े का रूप क्या है ? यह साफ़ तौर से समझ लेना चाहिए। रियासत-रियासत में उसका रूप जुदा-जुदा है। लेकिन हर जगह माँग पूरी जिम्मेदार सरकार के लिए है। झगड़ा इस वक्त उस माँग को पूरा कराने का नहीं है, बल्कि उस माँग के लिए लोगों को संगठित करने के हक़ को कायम करने का है। जब वह हक़ नहीं दिया जाता और नागरिक स्वतन्त्रता कुचली जाती है, लोगों के लिए हलचल मचाने के वैधानिक तरीकों का रास्ता खुला नहीं रह जाता। तब चुनाव के लिए उनके सामने दो ही रास्ते रह जाते हैं कि वे या तो तमाम राज-नैतिक और सार्वजनिक हलचलों को छोड़ दें और आत्मा की जलालत सहें और उन्हें सनानेवाले जुल्म चलने रहे, या वे उसमें सीधी टक्कर लें। वह सीधी टक्कर, हमारी विधि के अनुसार, बिलकुल शान्तिदायक सत्याग्रह है और हिंसा और बुराई के सामने झुकने में, नतीजा चाहे जो कुछ हो, इन्कार कर देना है। इस तरह आज का तात्कालिक मसला तो ज्यादातर रियासतों में नागरिक स्वतन्त्रता का है, हालाँकि लक्ष्य हर जगह जिम्मेदार सरकार कायम करने का है। जयपुर में तो कुछ हद तक समस्या और भी सीमित हो जाती है; क्योंकि वहाँ की सरकार प्रजामण्डल के दुर्भिक्ष-सहायता के काम के मग़ठन की मुख़ालफ़त करती है।

ब्रिटिश-सरकार के मद्दम्य अपनी अन्तर्राष्ट्रीय नीति का समर्थन करते हुए हममें अक्सर कहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय या राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में वे अमन-चैन पसन्द करने हैं और ताकत और हिंसा के तरीकों में तो वे डरते हैं। अमन-चैन के नाम पर उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय धन बुरी-से-बुरी तरह ऐंठने और गालबन्दी में मदद की है और प्रोत्साहन दिया है

यम हों; लेकिन इसका मतलब है—‘आजादी’ शब्द खास तौर से इसी बात पर जोर देने के लिए इस्तमाल किया गया है—कि हम ब्रिटेन से साम्राज्यवादी सम्बन्ध तोड़ देना चाहते हैं। अगर साम्राज्यवाद इंग्लैंड में होता है तो हमें जरूर ही उससे अलग होजाना चाहिए; क्योंकि तबतक इंग्लैंड में साम्राज्यवाद है, तबतक इंग्लैंड और हिन्दुस्तान में अगर किसी सम्बन्ध की संभावना हो सकती हो तो वह किसी-न-किसी रूप में सिर्फ साम्राज्यवादी शासन की ही होगी। वह सम्बन्ध चाहे दिनोंदिन खराब हो जाता जाय, चाहे वह जितना स्पष्ट है, उससे और कम स्पष्ट होजाय, चाहे वह राजनैतिक पहलू पर भी स्पष्ट न हो और फिर भी चाहे उसका आर्थिक पहलू बहुत मजबूत हो। इसलिए साम्राज्यवादी ब्रिटेन की परिभाषा में आजादी का मतलब हिन्दुस्तान का इंग्लैंड से अलग होना है। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो सोच सकता हूँ और इस विचार का स्वागत भी करूँ कि इंग्लैंड और हिन्दुस्तान के बीच सम्बन्ध रहे; लेकिन उसकी बुनियाद साम्राज्य न होकर और कुछ हो।

मजिस्ट्रेट-मक़मूद पर पहुँचा देगा, जो फूट के साधनों को रोकता है और जो संयुक्त भारत के हमारे सपने को पूरा करता है ।

नामूली-से फ़ायदे और लाभ कभी-कभी चाहे हमें ललचा लें; लेकिन अगर वे हमारे महान् लक्ष्य के रास्ते में आते हैं तो हमें उनको अस्वीकार कर देना चाहिए और दूर कर देना चाहिए । मौकों पर भड़क-कर हम अपने सिद्धान्त को भूल सकते हैं । अगर हम सिद्धान्तों को भूलें तो अपने खतरे पर भूलें । हमारा ध्येय तो महान् है, हमारे साधन भी इसलिए ऐसे होने चाहिए कि कोई उनकी ओर उँगली न उठा सके । बड़ी बात पर हम बाजी लगाते हैं । हमें उसके योग्य होना चाहिए । महान् ध्येय और छोटे-छोटे आदमी साथ नहीं चल सकते ।

फ़रवरी १९३९ ।

की अनिश्चित सरकार के डाने में अधिक है। इसलिए उसका जवाब देना मुश्किल है, क्योंकि वह बहुत-सी बातों पर मूकदर्शित होता है। वह तुल्य तो हमपर मूकदर्शित है और ज्यादातर ब्रिटिश-सरकार पर तथा बहुत-सी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बातों पर। यह स्पष्ट है कि अगर ब्रिटेन और हिन्दुस्तानियों के बीच आपसी समझौता हो तो लाजिमी तौर पर उस समझौते के पूरे होने की क्रिया में धीरे-धीरे बहुत-से परिवर्तन के स्थान आयेंगे। चाहे वक्त उसमें लगे, लेकिन उस क्रिया में कुछ घटनाएँ जरूर ही होंगी। यकायक ही कोई एकदम बड़ा परिवर्तन नहीं कर सकता। दूसरी तरफ, अगर आपसी समझौते में परिवर्तन की सम्भावना नहीं होती तो हलचलें मचने का मौका रहता है और यह कहना मुश्किल है कि हलचल का नतीजा क्या होगा। यह तो हलचलों के परिमाण और आर्थिक कारणों पर, जो हलचल पैदा करने में निर्भर होता है। उनमें कुछ भी हो सकता है; क्योंकि मैं देखता हूँ कि हिन्दुस्तान की असली समस्या, अपने भिन्न-भिन्न पहलुओं में, आर्थिक है। खान समस्या का धरती की समस्या है। बेहद बेकारी फैली है, और धरती पर भार इतना ही कटो ज्यादा है। उसीसे मध्यमवर्गीय समस्या है क्योंकि अगर कोई धरती की समस्या पर विचार करना चाहता है तो उस आर्थिक मवाल पर जरूर विचार करना होगा। और भी बहुत-सी समस्याएँ हैं जैसे मध्यम वर्गवालों की बेकारी। उन सबका एकमात्र इलाज है खान-धरती-जिसमें वे एक-दूसरे में मेल खा जायें और अलग-अलग न रहें।

इन सब समस्याओं का एकमात्र मुलझाने के बहुत-से कारण हैं लेकिन असली कारण यह है कि सालों हाजत के ठीक न होने से जनता की हालत दिनोदिन गिरती ही जा रही है। राजनैतिक इच्छा का ऊपर से बदल देने में ही वे नहीं मुलझेगी। राजनैतिक आकार का पैसा भी हो सकता है जो उन समस्याओं को मुलझाने में सहायता है राजनैतिक आकार की कमीही यह है, कि वह इन समस्याओं को मुलझाने और इनका हल निकालने में आसानी पैदा करता है या नहीं ?

इसलिए बीच के काल के तारों में सिर्फ इतना ही कहा जा सकता



से परेशान कर देने के लिए अक्सर हर तरह की कोशिश की जाती है।

सर सेम्युअल होर की तरफ से कामन्स सभा में कहा गया था कि "हिन्दुस्तान में ५०० से ज्यादा आदमियों के सन् १९३२ में तबियत-अवज्ञा-आन्दोलन में कोड़े लगाए गये थे।" कोड़े मारने या न मारने के रिवाज से अक्सर यह आंका जाता है कि अमुक राज्य कितना सभ्य है। बहुतसे सभ्य राज्यों ने इस रिवाज को एकदम बन्द कर दिया है, और जहाँपर यह रिवाज चालू है वहाँ भी सिर्फ़ उन्हीं जुर्मों के लिए कोड़े लगाये जाते हैं जिन्हें नीच-से-नीच या हैवानी समझा जाता है, जैसे छोटी उम्र की लड़कियों पर बलात्कार, बग़ैरा। शायद कुछ महीने पहले कुछ (अराजनैतिक) जुर्मों के लिए कोड़े की सजा कायम रखने के सवाल पर असेम्बली में बहस हुई थी। सरकारी वक्ताओं ने कहा था कि कुछ हैवानी जुर्मों के लिए कोड़े की सजा जरूरी है। शायद हरेक दिमागी और रूहानी आदमी की राय इसके खिलाफ़ है। उनका कहना है कि हैवानी जुर्मों के लिए हैवानी सजा देना सबसे बेवकूफी का तरीका है। लेकिन चाहे जो कुछ हो, हिन्दुस्तान में पूर्ण राजनैतिक और टैकनीकल जुर्मों के लिए या जेल की व्यवस्था के खिलाफ़ छोटे-मोटे जुर्मों के लिए कोड़े लगाना आम रिवाज है। और इसमें निश्चित ही कोई नैतिक कमीनापन नहीं माना जाता।

राजनैतिक स्त्री कैदियों के साथ तो और भी सख्ती का बर्ताव किया जाता है। हजारों औरतों को जेल में डाला गया; लेकिन उनमें से बहुत थोड़ी औरतों को 'ए' या 'बी' दर्जा दिया गया। जेल में स्त्रियों की—राजनैतिक या अराजनैतिक—हालत आदमियों की हालत की बनिस्बत कहीं गई-बीनी है। आदमी अपने-अपने काम से जेल के भीतर इधर-उधर घूम तां लेते हैं। उनका मन बहल जाता है, हिलना-डुलना भी हो जाता है और इसमें कुछ हद तक उनका मन ताजा हो जाता है। औरतों को हालांकि कुछ हलका काम दिया जाता है, पर उन्हें तंग जगह में पाम-पास रख दिया जाता है। वे बेहद रूखी जिन्दगी बिताती हैं। औमत अपराधियों की बनिस्बत अपराधिनियाँ भी साथिन के रूप

न हो, तो हमने ही यह नीतिगत निष्कर्ष है कि अगर जेल में बाहर उभरे भोजन-वहन जिन्दगी का महारा मिल जाय और उसकी सामूहिक चर्चों पूरी होती रहे तो यह प्रकाश मानने और अपराध करने को छोड़ने के लिए कहीं ज्यादा बेकार होगा। इसका मतलब यह है कि प्रकाश मानने के लिए उम्मीदवान भूख-ध्यान और सुमीकर का प्रयोग है। इस स्थान को दूर कर दीजिए, प्रकाश इच्छना करने दिलायगा। इस तरह प्रकाश और अपराध का इलाज मिला गया नहीं है, बल्कि उसके प्रतिपक्षी कारणों को दूर करना है; लेकिन उभरे गहरे और कानिकारी समाजवाद के लिए पिछले साल के गृह-संस्थ को जिम्मेदार बनाने की बेसी इच्छा नहीं है, हालांकि उन्होंने जो-कुछ कहा उसमें ऐसे समाजवाद पैदा हो सकते हैं। दूसरे और ऊँचे ओहदे पर बैठकर वे अपने अर्थशास्त्र के गहरे जान की झलके कभी-कभी हमें के लेने देते रहे हैं। हममें संदेह नहीं कि अपनी मिय्या दृष्टि को उन्हें छोड़ना पड़ेगा।

राजनैतिक कैदियों में अलहदा-अलहदा दर्ज करने के बारे में अन्तर सरकार में कहा गया है, लेकिन उसमें रचना करने में इन्कार कर दिया है। मेरे खयाल में, मोजरा हालतों में, सरकार में ठीक ही किया है; क्योंकि राजनैतिकों का मास्टम होने किया जाय 'सविनय अवज्ञा करने वाले कैदियों का आमानों में अलहदा किया जा सकता है, लेकिन राजनैतिक कानूनों और नियमों की धाराओं को छोड़कर राजनैतिक विद्रोही का पकड़ने के और भी बहुत-से तरीके हैं। देहानों में तो यह आम रिवाज है कि किमान-नेता या कार्यकर्ता ज़ाबता फ़ौजदारी की निरोधक धाराओं के मानहन या उसमें भी बड़े जुर्मों के लिए पकड़े जाते हैं। ये आदमी उनमें ही राजनैतिक कैदी हैं जिनमें दूसरे, और ऐसे आदमियों की तादाद बहुत थोड़ी है। यह पद्धति बड़े शहरों में प्रकाशन की वजह से ज्यादा नहीं पाई जाती।

ऊँची दीवारों और लोहे के दरवाजे जेल की छोटी-सी दुनिया को बाहर की विस्तृत दुनिया में विच्छिन्न कर देते हैं। इस जेल की दुनिया की हरेक चीज़ जुदा है। लम्बी मियाद के कैदियों और आजीवन कारावास

से वही उसकी कमजोरी है; क्योंकि जब उस पद्धति का एक बार फल होना है तो वह पूरी तरह से होता है।

पिछले साल में जेल में गृह-मन्त्र्य को लिया और मैंने उम्मेद किया कि १०० पी० की जेलों की शृङ्खला के आरम्भ पर सरकार के राजस्वों में बहुत दुःख के साथ मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इस प्रान्त की जेलों में अभिचार, हिंसा और झूठ एकत्र भर गया है। बहुत साल पहले मैंने अपनी जेल के सुपरिण्टेण्डेंट को (बाद में वह इन्सपेक्टर-जनरल हो गया था) कुछ बुराईयाँ बताई थीं। उसने उन्हें मंजूर किया और कहा कि पहलेपहल जब वह जेल में नौकर हुआ था, तब उसमें सुधार करने के लिए उत्साह था; लेकिन बाद में उसने पाया कि कुछ हो-या नहीं सकता, इसलिए पुराना डरा उसने चलने दिया।

अकेले आदमियों के किये असल में कुछ नहीं हो सकता। और बहुत से ऐसे लोग भी कोई आदर्श उदाहरण नहीं हैं, जिन पर जिम्मेदारी है। भारतीय बंदीगृह आखिर बड़े हिन्दुस्तान का ही तो एक छोटा रूप है। महत्व की बात तो यह है कि जेल का ध्येय क्या है? आदमियों की भलाई, या एक मशीन का चलाना, या स्थिर स्वार्थी को कायम रखना? सजायें क्यों दी जाती हैं? क्या समाज या सरकार की तरफ से बदला लेने के लिए, या अपराधी को सुधारने की नीयत में?

क्या जज या जेल के अफसर कभी इस बात को मोचते हैं कि अभागा अपराधी जो उनके सामने है, उसे ऐसा बना देना चाहिए कि जेल से निकलने पर वह समाज के काबिल हो? ऐसे सवाल उठाना महज हिमाकृत की बात है; क्योंकि कितने ऐसे आदमी हैं जो असल में इन वारे में चिन्ता करने हैं?

हम उम्मीद करे कि हमारे जज बड़े उदार आदमी हैं; निश्चय ही वे बड़ी लम्बी-लम्बी सजायें तो दे ही देते हैं। पेशावर से १५ दिसम्बर १९३२ की एसोशिएटेड प्रेस की खबर है—

“कोल्डस्ट्रीम के कत्ल के बाद ही सीमाप्रान्त के इन्सपेक्टर-जनरल तथा दूसरे बड़े अफसरों को धमकी भरी चिट्ठियाँ लिखने के लिए जमना-

दास नाम के मुलजिम को पेशावर के सिटी मजिस्ट्रेट ने ताजीरात हिन्द की दफ्ता ५०० व ५०७ के अनुसार ८ साल की सजा दी।" जमनादास देखने में लड़का लगता था।

एक और नार्को की मिसाल है। लाहौर से २२ अप्रैल १९३३ को एसोशियेटेड प्रेस की खबर है:—

“सात इंच लम्बे फने का चाकू पात रखने की वजह से सजादत नाम के एक मुत्तलमान को सिटी मजिस्ट्रेट ने आर्म्स एक्ट की १९वीं दफ्ता के मुताबिक १८ महीने सख्त कैद की सजा दी।”

तीसरी मिसाल नदरास की ६ जुलाई १९३३ की है। रामस्वामी नाम के एक लड़के ने चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट की अदालत में, क्योंकि वह एक पड़यंत्र का मुकदमा सुन रहा था, एक पटाखा चला दिया। उससे कोई नुकसान नहीं हो सकता था। फिर भी रामस्वामी को बच्चों के जेल में रहने के लिए चार साल की सजा हुई।

ये तीन मिसालें कोई गैरमामूली मिसालें नहीं हैं। और बहुत-सी मिसालें उनमें जोड़ी जा सकती हैं। उनमें भी बुरी और मिसालें हैं। मैं समझता हूँ, हिन्दुस्तान में बहुत दिनों से आदमी दुःख उठा रहे हैं इसलिए ऐसी अजीब सजाएँ जब दी जाती हैं तो उन्हें अचरज नहीं होना। अपनी तो मैं कहता हूँ चाहे जितना अभ्यास करूँ तब भी उन सजाओं के पड़ने ही मेरा दम बना खड़े नहीं रह सकता। नाजी जर्मनी को छोड़कर कहीं भी इस तरह की सजाएँ बाबेला मचा देगी।

और न्याय हिन्दुस्तान में अर्धे होकर नहीं किया जाता। नदरगर्जों की आंख नदर खड़ी रहती है। किसानों के हरेक विद्रोह में बहुत-से किसानों को अजीबान करारवासी मिलता है। ये छोटे-छोटे विद्रोह अक्सर उभरे खड़े होते हैं जब समाजियों के गुमाश्ते आ-आकर उन दुखी किसानों में आर चुभाते हैं। जैसे वे किसान बर्दाश्त नहीं कर सकते। सिर्फ उन आदमियों की सहायता करके जा मौके पर मौजूद थे, उधरभर के लिए जलम्बी सजा देने के लिए जेल में डाल देने का औचित्य मिल जाता है। उनके भडकने का कारण तो साफ ही कभी देखा जाता है। सनासत भी

ठीक तरह में नहीं होती। पुलिस जिन आइसो म मांगत होती है उनी-
को आगामी में कोस दिया जाता है। अगर इन मामलों को गवर्नमेंट
को दिया जा सके या जमानत-श्री-आन्दाज में उसे सम्बन्धित किया
जा सके, तब तो जुर्म लगाना और जल्दी सजायें देना और भी आसान
हो जाता है।

हाल ही के एक मामले में एक किसान ने डेन्स-कॉन्सुलर के चाचा मार
दिया, जिनपर उसे एक साल की सजा हुई। दूसरी मियाल इसमें कुछ भिन्न
है। वह पिछली जुलाई में मेरठ में हुई। एक नायब मजिस्ट्रेटदार एक गाँव
के आदमियों से आधपासी बनूल करने गया। उसके चपरामी एक किसान
को रोककर उसके पास लाये और शिकायत की कि उसकी स्त्री और
लड़कों ने उन्हें मारा है। एक अजीब कहानी थी। शेर, नायब ने हुक्म
दिया कि अपनी स्त्री के कमर के लिए उन किसान का सजा दी जाय।
और तब तीनों—नायब खुद और दो चपरामी—आदमियों ने छड़ी से
उस दीन को खूब मारा। इतना मारा कि उन मार में बाद में वह मर
गया। नायब और चपरामियों पर मरुदना जल्द और नानूली चोट
महँवाने के लिए उन्हें कमरदार टहराया गया और बाद में उन बात पर
उन्हें छोड़ दिया गया कि छ महीने तक वे अपना आचरण ठीक रखें।
आचरण ठीक रखने में मन्तव्य में समझता हूँ, यह था कि आगे के छः
महीनों में वे किनी आदमी का इतना न मारे कि वह मर जाय। इन
मामलों का एक-दूसरे में मूकाविला करना बड़ा शिक्षाप्रद है।

इसलिए जेलों में सुधार करने के लिए अनिवार्यतः दण्ड-विधि को
सुधारना होगा। उसमें भी ज्यादा उन सजा की मनोवृत्तियों को बदलना
होगा जो कि अब भी सी बरम पीछे के जमाने में पड़े हुए हैं और सजा
और सुधार के नये विचारों में एकदम नावाकिल है। इसके लिए तन्नाम
शामत-प्रणाली को बदलना होगा।

लेकिन हम जेलों के बारे में ही विचार करें। सुधार इस विचार की
बुनियाद पर होना चाहिए कि कैदी को सजा नहीं दी जा रही है, बल्कि
उसे सुधारा जा रहा है और एक अच्छा नागरिक बनाया जा रहा है।

इसको लेकर साम्प्रदायिक समस्या उठ खड़ी होती है। अगर राष्ट्रीय पंचायत के चुनाव में जनता का हाथ रहे तो स्पष्टरूप से जनता पद या नौकरियाँ पाने में दिलचस्पी नहीं लेगी। उसकी दिलचस्पी अपनी ही आर्थिक कठिनाइयों में है। इसलिए ध्यान फ़ौरन ही सामाजिक और आर्थिक सवालों पर दिया जायगा और वे समस्याएँ जो बड़ी दिखाई देती हैं लेकिन असल में अहमियत नहीं रखती, जैसे साम्प्रदायिक समस्या आदि, हटकर पीछे पड़ जायेंगी।

सवाल का दूसरा हिस्सा है :—

“क्या भारतीय शासन-विधान से किसी तरह वह ज़रूरत पूरी होती है ?”

मैंने अभी कहा है कि विधान की कसौटी यह है कि वह आर्थिक समस्याओं के, जो हमारे सामने हैं और जो असली समस्याएँ हैं, उन्हें सुलझाने में मदद देता है या नहीं ? भारतीय-शासन-विधान की, जैसा कि शायद आप जानते हैं, लगभग हर दृष्टि से हिन्दुस्तान के हरेक नरम और गरम दल ने आलोचना की है। हिन्दुस्तान में किसीने भी उसे अच्छा कहा है, इसमें मुझे मन्देह है अगर कुछ आदमी ऐसे हैं जो उसे वर्दाश करने के लिए तैयार हैं, तो हिन्दुस्तान में या तो उनके स्थापित स्वार्थ हैं या ये वे लोग हैं जो सिर्फ़ आदत की ही वजह से ब्रिटिश-सरकार के सब कामों का वर्दाश कर लेते हैं। इन आदमियों का छोड़कर हिन्दुस्तान के करीब-करीब हरेक राजनैतिक दल ने इस भारतीय-शासन-विधान का घोर विरोध किया है। सब उसकी मुश्कालफ्त करने हैं और उन्होंने हर तरह से उसकी आलोचना की है। सबका विचार है कि हमारी मदद करने के बजाय वह बान्धव में हमें हटाना है, हमारे हाथ-पैर का इनकी मजबूती से जकड़ना है कि हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे। ब्रिटेन या हिन्दुस्तान के इन तमाम स्थापित स्वार्थों ने इस विधान में ऐसी स्थायी जगह पायी है कि क्रांति से कम कोई भी खान सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक परिवर्तन होना ऊर्ध्व-ऊर्ध्व नामुमकिन है। एक तरह से हम भारतीय-शासन-विधान

साहित्य का भविष्य

कुछ दिन से फिर हिन्दी और उर्दू की बहस उठी है, और लोगों के दिलों में यह शक पैदा होता है कि हिन्दीवाले उर्दू को दबा रहे हैं और उर्दूवाले हिन्दी को। वगैर इस प्रश्न पर गौर किये जोगीले लेख लिखे जाते हैं और यह समझा जाता है कि जितना हम दूसरे पर हमला करते हैं उतना ही हम अपनी प्रिय भाषा को लाभ पहुँचाते हैं; लेकिन अगर जरा भी विचार किया जाय तो यह बिलकुल फिजूल मालूम होता है। साहित्य ऐसे नहीं बढ़ा करते।

दूसरी बात यह भी देखने में आती है कि अक्सर साहित्य का अर्थ हम कुछ दूसरा ही लगाते हैं। हम भाषा की छोटी बातों में बहुत फँसे रहते हैं और बुनियादी बातों को भूल जाते हैं। साहित्य किमके लिए होता है? क्या वह थोड़े-से ऊपर के पढ़े-लिखे आदमियों के लिए होता है या आम जनता के लिए? जबतक हम इसका जवाब न दें, उस समय तक हमें साहित्य के भविष्य का रास्ता ठीक तौर से नहीं दीखता। और अगर हम इस बात का निश्चय करलें, तब शायद हमारे हिन्दी-उर्दू आदि के और झगड़े भी हल हो जायें।

पहली बात जो हमको याद रखनी है वह यह है कि हमारा आजकल का साहित्य बहुत पिछड़ा हुआ है। यूरोप की किसी भी भाषा से मुकाबिला किया जाय तो हम काफ़ी गिरे हुए हैं। जो नई किताबें हमारे यहाँ निकल रही हैं वे अन्वय दर्जे की नहीं होंगी, और कोई आदमी आजकल की दुनिया को समझना चाहे तो उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि वह विदेशी भाषाओं की किताबें पढ़े। नई विचार-धारायें अभी तक हमारे साहित्य में कम पहुँची हैं। इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति इत्यादि

पर हमारी भाषाओं में माकूल पुस्तकें बहुत कम हैं। हमें इधर पूरे तौर से ध्यान देना है, नहीं तो हमारी भाषाएँ बढ़ नहीं सकतीं। जो लोग इन बातों के सोचने के प्यासे हैं उनको मजबूरन और जगह जाना पड़ेगा।

बहुत सारे प्रश्न उठते हैं। इन सब पर मैं इस समय नहीं लिख सकता; लेकिन चन्द बातों की तरफ ध्यान दिलाना चाहता हूँ:—

१. मेरा पूरा विश्वास है कि हिन्दी और उर्दू के मुकाबिले से दोनों को हानि पहुँचती है। वे एक-दूसरे के सहयोग से ही बढ़ सकती हैं। और एक के बढ़ने से दूसरे को भी फ़ायदा पहुँचेगा। इसलिए उनका सम्बन्ध मुकाबिले का नहीं होना चाहिए, चाहे वह कभी अलग-अलग रास्ते पर क्यों न चलें। दूसरे की तरक्की से खुशी होनी चाहिए; क्योंकि उसका नतीजा अपनी तरक्की होगा। यूरोप में जब नये साहित्य (अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, इटालियन) बढ़े, तब सब साथ बढ़े, एक-दूसरे को दबाकर और मुकाबिला करके नहीं।

२. इसके माने यह नहीं कि हर भाषा के प्रेमी अपनी भाषा की अलग उन्नति की कोशिश न करे। वे अवश्य करे; लेकिन वह दूसरे की विरोधी कोशिश न हो और मूल सिद्धान्त सामने रखे।

३. यह खाली उर्दू-हिन्दी के लिए नहीं, बल्कि हमारी सब बड़ी भाषाओं के लिए—बंगाली, मराठी, गुजराती, तामिल, तेलगू, कन्नड, मलयालम—यह बात साफ़ कर देनी चाहिए कि हम इन सब भाषाओं की तरक्की चाहते हैं और कोई मुकाबिला नहीं। हर प्रान्त ने वहाँकी भाषा ही प्रथम है। हिन्दी या हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा अवश्य है और होनी चाहिए, लेकिन वह प्रान्तीय भाषा के पीछे ही आ सकती है। अगर यह बात निश्चय हो जावे और साफ़-साफ़ कह दिया जावे तो बहुत गलत-फ़हमियाँ दूर हो जावे और भाषाओं का सम्बन्ध बढ़े।

४. हिन्दी और उर्दू का सम्बन्ध बहुत करीब का है और फिर भी कुछ दूर होता जा रहा है। इनमें दोनों की हानि होती है। एक शरीर पर दो सिर हैं और वे आपस में लडा करते हैं। हमें दो दाँते सम्झनी हैं और हालाँकि वे दो दाँते ऊपरी तौर से कुछ विरोधी सम्झनी हैं,

फिर भी उनमें कोई जवानी विरोध नहीं है। एक तो यह कि हमारे भाषा हिन्दी और उर्दू में लिपि और शब्द जो कि चीन की शैली, जिममें संस्कृत या अरबी और फारसी के कठिन शब्द कम हों। इस आम तौर में हिन्दुस्तानी कहते हैं। कड़ा जाना है, और यह बात यह कि ऐसी चीन की भाषा लिपि में दोनों तरफ की सराशियाँ आ जाते हैं, एक शैली भाषा पैदा होती है, जो किमीको भी पसन्द नहीं है और जिममें न मोन्दर्य होता है, न शक्ति। यह बात गरी होने हुए बहुत बुनियाद नहीं रखती और मेरा विचार है कि हिन्दी और उर्दू मेल में हम एक बहुत सूबमूरत और बलवान भाषा पैदा करेंगे, जि जवानी की ताकत हो और जो दुनिया की भाषाओं में एक माकूल भाषा है।

यह बात होते हुए भी हमें याद रखना है कि भाषायें खबरदस्ती न बनतीं या बढ़तीं। साहित्य फूल की तरह खिलना है और उसपर दबा डालने में मुरजा जाता है। इसलिए अगर हिन्दी-उर्दू भी अभी कुछ दि तक अलग-अलग झुके, तो हमको उनपर ऐतराज नहीं करना चाहिए। यह कोई शिकायत की बात नहीं। हमें दोनों को समझने की कोशिश करनी चाहिए: क्योंकि जितने अधिक शब्द हमारी भाषा में हों उन ही अच्छा।

५. लिपि के बारे में यह बिल्कुल निश्चय हो जाना चाहिए दोनों लिपियाँ—देवनागरी और उर्दू—जारी रहें और हरेक को आकार हो कि जिममें चाहे, वह लिखे। अक्सर इस बात की चर्चा होती कि एक प्रान्त में हिन्दी लिपि को दवाने है, जैसे मरहदी प्रान्त, या इस प्रान्त में उर्दू लिपि को भोका नहीं मिलना। हमें एक तरफ़ की बखाली नहीं कहनी है, बल्कि सिद्धान्त रखना है कि हर जगह दोनों लिपि को पूरी आजादी होनी चाहिए। हिन्दी और उर्दू दोनों के प्रेमियों मिलकर यह बात माननी चाहिए और इसका यत्न करना चाहिए।

६. यह प्रश्न असल में हिन्दी और उर्दू ने भी दूर जाता है। मेरा राय में हर भाषा व हर लिपि को पूरी आजादी होनी चाहिए, और उसके बोलने और लिखनेवाले काफी हों। मसलन, अगर कलकत्ते

इसलिए हमारे लिए मामले बुनियादी प्रश्न यही है कि हम आम-जनता के लिए अपना साहित्य बनायें और उनको हमें अपने दिमागों के मामले रखकर लियें। हर लिपिनेवाले को अपने से पूछना है, "मेरे लिपि-के लिए लिखा है ?"

९. एक और बात। यह आवश्यक है कि हिन्दी में यूरोप की भाषाओं में प्रसिद्ध पुस्तकों का अनुवाद हो। इसी तरह में हम दुनिया के विचार यहाँ लायेंगे और उनके साहित्य से लाभ उठावेंगे।

२५ जुलाई, १९३७।

हिन्दी और उर्दू का मेल

हमें हिन्दुस्तानी को उत्तरी और मध्य भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाने पर विचार करना चाहिए। दोनों रूप सर्वथा भिन्न हैं। इसलिए इनपर अल-हदा-अल-हदा विचार होना चाहिए।

हिन्दुस्तानी के हिन्दी और उर्दू दो खास स्वरूप हैं। यह साफ़ है कि दोनों का आधार एक है, व्याकरण भी एक है और दोनों का कोष भी एक ही है। वास्तव में दोनों का उद्गम एक ही है। इतना होनेपर भी इस समय जो दोनों में भेद होगया है, वह भी विचारणीय है। कहा जाता है कि कुछ हदतक हिन्दी का आधार संस्कृत और उर्दू का फ़ारसी है। इन दोनों भाषाओं पर इस दृष्टिकोण से विचार करना कि हिन्दी हिन्दुओं की और उर्दू मुसलमानों की भाषा है, युक्तिमय नहीं है। उर्दू की लिपि को छोड़कर यदि हम केवल भाषा पर ही विचार करें तो मालूम पड़ेगा कि उर्दू हिन्दुस्तान के बाहर कहीं भी नहीं बोली जाती है। हाँ, उत्तरी भारत के कुछ हिन्दुओं के घरों में वह बोली जाती है।

मुसलमानों के शासनकाल में फ़ारसी राजदरबार की भाषा रही है। मुगल शासन के अन्ततक फ़ारसी का इसी रूप में प्रयोग होता रहा तथा उत्तरी और मध्य भारत में हिन्दी ही बोली जाती रही। एक जीवित भाषा के नाम फ़ारसी के बहुतसे शब्द इसमें प्रचलित होगये। इसी तरह गुजराती और मराठी में भी ऐसा ही हुआ। यह उल्लेख हुआ कि हिन्दी हिन्दी ही रही। राजदरबार में रहनेवाले व्यक्तियों में हिन्दी प्रचलित रही किन्तु उसमें इतना परिवर्तन होगया कि वह लगभग फ़ारसी-जैसी होगई। यह भाषा 'रंजना' कहलानी थी। शायद मुगलों के शासन-काल में मुगल-सैन्यों से 'उर्दू' शब्द प्रचलित हुआ। यह शब्द

हिन्दी का पर्यायवाची समझा जाता था। उर्दू शब्द से वही अर्थ समझा जाता था जो हिन्दी से। १८५७ के विद्रोह तक हिन्दी और उर्दू में लिपि की छोड़कर कोई और भेद नहीं था। यह तो सभी जानते हैं कि कई हिन्दी के प्रमुख कवि मुसलमान थे। ग़दर तक ही नहीं; बल्कि उसके बाद भी कुछ दिनों तक प्रचलित भाषा के लिए हिन्दी शब्द का प्रयोग किया जाता था। यह लिपि के लिए प्रयोग नहीं किया जाता था, बल्कि भाषा के लिए। जिन मुसलमान कवियों ने, अपने काव्य उर्दू-लिपि में लिखे, वे भी भाषा को हिन्दी ही कहा करते थे।

१९ वीं सदी के आरम्भ के लगभग 'हिन्दी' और 'उर्दू' शब्दों के प्रयोग में कुछ फ़र्क होने लगा। यह फ़र्क धीरे-धीरे बढ़ता गया। शायद यह फ़र्क उस राष्ट्रीय जागृति का प्रतिबिम्ब था, जो कि हिन्दुओं में हो रही थी। उन्होंने परिष्कृत हिन्दी और देवनागरी की लिपि पर जोर दिया। आरंभ में उनकी राष्ट्रीयता का स्वरूप एक प्रकार से हिन्दू राष्ट्रीयता ही था। आरम्भ में ऐसा होना अनिवार्य भी था। इसके कुछ दिनों बाद मुसलमानों में भी धीरे-धीरे राष्ट्रीय जागृति पैदा हुई। उनका राष्ट्रीयता का स्वरूप भी मुस्लिम राष्ट्रीयता ही था।

इस तरह ने उन्होंने उर्दू को अपनी भाषा समझना शुरू कर दिया। लिपियों के बारे में वाद-विवाद होने लगा और यह भी मतभेद का एक विषय बन गया, कि अदालतों और सरकारी दफ्तरों में किस लिपि का प्रयोग किया जाय। राजनैतिक और राष्ट्रीय जागृति का ही यह परिणाम हुआ कि भाषा की लिपि के विषय में मतभेद हुआ। आरम्भ में इमने साम्प्रदायिकता का स्वरूप लिया। जैसे-जैसे यह राष्ट्रीयता वास्तविक राष्ट्रीयता का स्वरूप लेती गई, अर्थात् हिन्दुस्तान को एक राष्ट्र समझा जाने लगा और साम्प्रदायिकता की भावना दबने लगी, वैसे ही भाषा के सम्बन्ध में इस मत-भेद को समाप्त करने की इच्छा बढ़ती गई। बुद्धिमान व्यक्तियों ने उन अनगिनत बातों पर प्रकाश डालना शुरू कर दिया, जो हिन्दी और उर्दू दोनों में ही दिखाई देती थीं। इन बात की चर्चा होने लगी कि हिन्दुस्तानी उत्तरी और मध्य भारत की ही नहीं, बल्कि समस्त

देश की राष्ट्रभाषा है। वेद की शान है कि भारत में अभी तक साम्प्रदायिकता का जोर है, अतः यह मत भेद की एगता की मनोवृत्ति के साथ-साथ अभी तक मौजूद है। यह निश्चित है कि जब राष्ट्रीयता का पूरा विकास हो जायगा तो यह मत-भेद स्वयं ही खत्म हो जायगा। हमें यह अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि तभी हम समझ सकेंगे कि इस घुसाई की जड़ क्या है। आप किसी भी ऐसे व्यक्ति को ले लीजिए जो इस मत-भेद से सम्बन्ध रखता हो। उसके बारे में खोज कीजिये तो आपको पता चलेगा कि वह सम्प्रदायवादी और सम्भवतः राजनैतिक प्रतिश्रियावादी है। यद्यपि मुगलों के शासनकाल में हिन्दी और उर्दू दोनों शब्दों का ही प्रयोग होता था; किन्तु उर्दू शब्द खास तौर से उस भाषा का द्योतक था जो मुगलों की फौजों में बोली जाती थी। राज-दरबार और छावनियों के समीप रहनेवालों में कुछ फारसी के शब्द भी प्रचलित थे और वही शब्द बाद में भाषा में भी प्रचलित होगये। मुगलों के केन्द्र से दक्षिण की ओर चलते जाइयें तो मालूम होगा कि उर्दू शब्द हिन्दी में ही मिल गई। देहातो की वनिम्बत नगरो पर ही अदालतो का यह अमर पडा और नगरो में भी मध्यभारत के नगरो की वनिम्बत उत्तरी भारत में और भी ज्यादा अमर पडा।

इसमें हमें पता चलना है कि आज की उर्दू और हिन्दी में क्या भेद है। उर्दू नगरो की और हिन्दी शरमा की भाषा है 'हिन्दी' नगरो में भी बोली जाती है किन्तु उर्दू का पूर्ण रूप में शरमा भाषा ही है।

उर्दू और हिन्दी को निकट लाने की सम्भवा का स्वस्वत बहुत बडा है; क्योकि इन दोनों को समीप लाने का अर्थ शरमा और शरमा का समीप लाना है। किसी और मार्ग का अवलम्बन करना उचित होगा और उसका असर भी स्थिर न होगा। यदि कोई भाषा बदल जायगी है तो उसके बोलनेवाले भी बदल जाते हैं। उस हिन्दी और उर्दू में अधिक भेद नहीं है जो कि आमतौर पर शरमा में बोली जाती है। मद्रिभिक शरमा से जो भेद पैदा हो गया है वह भी पिछले चन्द वर्षो में ही हुआ है। साहित्य का भेद बडा भयकर है। कुछ लोगो का विश्वास है कि कुछ शरमा

सस्ता साहित्य मंडल : सर्वोदय साहित्य माला

पिचान्तेवां ग्रंथ

इसी तरह में हिन्दी-साहित्य के लिए भी काम करना चाहिए। और दोनों को मिलाकर हिन्दुस्तानी साहित्य की मजबूत बुनियाद डालनी चाहिए। इस बात की हमें बहुत बड़ा क्लेश नहीं करनी चाहिए कि हिन्दी और उर्दू में इस समय किनता फूट है, अगर दोनों का उद्देश एक है—यानी आम जनता की भाषा की तरफ ही—तब तो दोनों करीब आना जायगी। बुनियादी बात यही है कि हमारे साहित्यकार इस बात को याद रखने कि उनको थोड़े-से आदमियों के लिए नहीं लिखना है; बल्कि आम जनता के लिए लिखना है। तब उनकी भाषा सरल होगी और देश की असली संस्कृति की ताकत उगमें आजायगी। यह जमाना जाना रहा जब कि किसी देश की संस्कृति थोड़े-से ऊपर के आदमियों की थी। अब यह आम जनता की होती जाती है और यही साहित्य बड़ेगा जो इस बात को सामने रखता है।

मुझे खुशी है कि दिल्ली में हिन्दी-परिषद् की बैठक होनेवाली है।^१ मैं आना करता हूँ कि इसमें हमारे साहित्यकार नव मिल्कर ऐसे रास्ते निकालेंगे, जिससे हिन्दी-साहित्य और मजबूत हो और फूले। उनका काम किसी और साहित्य के विरोध में नहीं है; बल्कि उनके सहयोग से आगे बढ़ना। उर्दू हिन्दी के बहुत करीब है और इन दोनों का नाता तो पास का रहे ही गा। लेकिन हमें तो विदेशी साहित्यों से भी फायदा उठाना है; क्योंकि साहित्य की तरक्की विदेशों में बहुत हुई है और उससे हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं।

आजकल की दुनिया में चारों तरफ लड़ाई, दंगा, फसाद हो रहा है। हिन्दुस्तान में भी काफी फसाद है। और तरह-तरह की बहमें पैदा होती हैं। ऐसे मौकों पर यह और भी आवश्यक होता है कि हम अपनी नई संस्कृति की ऐसी बुनियाद रखें, जिसमें आजकल की दुनिया के विचार जम सकें। और जब हमारे सामने पेचीदा मसले आयें तो हम वहके-वहके न फिरे। संस्कृति को एक ऐसा पारस पत्थर होना चाहिए जिससे हर चीज की आजमाइश हो सके। अगर किसी जाति के पास यह

१. यह बैठक १४, १५ और १६ अप्रैल १९३९ को हुई।

साहित्य की बुनियाद

नहीं है तो वह दूर तक नहीं जा सकती। हमें अपने सांस्कृतिक मूल्य कायम करने हैं और उनको अपने साहित्य की और सभी काम की बुनियाद बनाना है।

१२ अप्रैल १९३९।

स्नातिकायें क्या करें ?

बहुत वर्ष पहले मुझे महिला-विद्यापीठ के हाल के शिलारोपण का सीभाग्य मिला था। इन हाल ही के वरसों में इतनी बातें होगई हैं कि समय का मुझे ठीक-ठीक अन्दाज नहीं रहा और थोड़े साल भी बहुत ज्यादा लगते हैं। तबसे बराबर मैं राजनैतिक बातों में और सीधी लड़ाई में फँसा रहा हूँ और हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई मेरे दिमाग पर चढ़ी रही है। महिला-विद्यापीठ से मेरा सम्बन्ध नहीं रह सका। पिछले चार महीनों में, जिनमें मैं जेल की दीवारों के बाहर की विस्तृत दुनिया में रहा हूँ, मेरे लिए बहुतसे बुलावे आये हैं, और बहुतसी सार्वजनिक कार्रवाइयों में हिस्सा लेने के निमन्त्रण मिले हैं। इन बुलावों की ओर मैंने ध्यान नहीं दिया और सार्वजनिक कार्रवाइयों से भी दूर रहा हूँ; क्योंकि मेरे कान तो बस एक ही बुलावे के लिए खुले थे और उसी एक उद्देश्य में मेरी सारी शक्ति लगी थी। वह बुलावा था हमारी दुखी और बहुत समय से कुचली जाने वाली मातृभूमि—भारत—का, और खास तौर से हमारी दीन, शोषित जनता का। और वह उद्देश्य था हिन्दुस्तानियों की मुकम्मिल आजादी।

इसलिए इस अहम मसले से हटकर दूसरी और मामूली बातों की ओर जाने से मैंने इन्कार कर दिया था। उन बातों में से कुछ अपने सीमित क्षेत्र में महत्व भी रखती थीं। लेकिन जब श्री संगमलाल अग्रवाल मेरे पास आये और जोर दिया कि मैं महिला-विद्यापीठ का दीक्षांत-भाषण दूँ ही, तो उनकी अपील का विरोध करना मुझे मुश्किल जान पड़ा; क्योंकि उस अपील के पीछे हिन्दुस्तान की लड़कियाँ अपनी जिन्दगी की देहलीज पर चिरकाल के बन्धन से स्वतंत्र होने की कोशिश करती और

विद्यगता के साथ भविष्य को ताकती दिखाई दें, यद्यपि जवानी के उल्लाह से उनकी आँखों में आशा थी।

इसलिए खास हालत में और विद्यगता के साथ मैं राखी हुआ। मुझे आशा नहीं थी कि उससे भी जरूरी बुलावा और कहीसे नहीं आजायगा। और अब मैं देखता हूँ कि वह जरूरी बुलावा बेहद पीड़ित बंगाल के मूबे से आया है। वहाँ जाना मेरे लिए जरूरी है और यह भी मुमकिन है कि महिला-विद्यापीठ के कन्वोकेशन के वक्त पर न लौट सकूँ। इसके लिए मुझे दुःख है, और मैं यही कर सकता हूँ कि उसके लिए सन्देश छोड़ जाऊँ।

अगर हमारे राष्ट्र को ऊँचा उठना है, तो वह कैसे उठ सकता है जब तक कि आधा राष्ट्र—हमारा महिला-समाज—पिछड़ा रहता है, अज्ञान और कुपड़ रहता है ? हमारे बच्चे किस प्रकार हिन्दुस्तान के संयत और प्रवीण नागरिक हो सकते हैं, अगर उनकी मातायें खुद संयत और प्रवीण नहीं हैं ? हमारा इतिहास हमें बहूतसी बनुर और ऐसी औरतों के हवाले देता है जो सच्ची थी और मरने तक बहादुर रही। उनके उदाहरणों का हमारे लिए मूब्य है। उनमें हमें प्रेरणा मिलनी है। फिर भी हम जानते हैं कि हिन्दुस्तान में तथा दूसरी जगहों में औरतों की हालत कितनी दौन है। हमारी सम्प्रदाय हमारे रीति-रिवाज हमारे कानून सब आदमी ने बनाये हैं, और आदमी ने अपनेकी ऊँची हालत में रखने का और स्त्रियों के साथ बर्तनो और विरौनी-जैसा बर्ताव करने और अपने फायदे और मनोरंजन के लिए उनका शोषण करने का बुरा ध्यान रक्खा है। इस लगानार बोल के नीचे दबी रहकर औरने अपनी शक्ति पूरी तरह से नहीं बहा पाई और सब आदमी उन्हें 'पछड़ी हुई होने का शोष देना है।

धीरे-धीरे कुछ पश्चिमी देशों में औरतों को कुछ आजादी मिल गई है, लेकिन हिन्दुस्तान में हम अब भी पिछड़े हुए हैं। हालाँकि उन्नत की भावना यहाँ भी पैदा होगई है। यहाँपर बहूतसी सामाजिक बुराईयों ने जिनसे हमें लडना है, और बहूतसे पुराने रीति-रिवाज जो हमें बाँधे हुए

हैं और जो हमें अद्वैत की ओर ले जाते हैं, उन्हें पौरुष है। पूरा और निराला, शीश और कुली की तरह आइसरी की पूर और ताजा पानी में भी यह सत्यता है। विदेशी धर्मों की अन्धेरी छाया और गंधा-विदेशी-सादे वास्तुमण्डल में तो वे अपनी सज्जि शीत सज्जि हैं।

उसलिए सबसे सामने बड़ी सम्प्रदाय यह है कि किस तरह हिन्दुधर्म को आकार देकर और हिन्दुधर्मी जगत् पर बड़े हुए लोग की जैसे इन करें ? लेकिन हिन्दुधर्म की आँखों का तो एक और काम है, यह यह कि वे आदमी के बनाए हुए रीति-रिवाजों और धर्मों के दुग्म में अपने को मूल्य करें। उन दूसरी सड़क को उन्हें खुद ही खोजना होगा; क्योंकि आदमी ने उन्हें मदद मिलने की सम्भावना नहीं है।

कर्मयोग के अन्तर्गत पर मौजूद बहुसंख्यी लड़कियाँ और स्त्रियाँ अपनी पढ़ाई खत्म कर चुकी होंगी, डिग्री ले चुकी होंगी और एक बड़े क्षेत्र में काम करने के लिए अपनेको तैयार कर चुकी होंगी। इन विस्तृत दुनिया के लिए वे दिन आदमी को लेकर जावेंगी और कौतूहल अन्दरनी भावना उन्हें स्वरूप देगी और उनके कामों की देखभाल करेगी ? मुझे डर है, उनमें से बहुतनी तो रोडमरी के नये घरेलू कामों में फँस जावेंगी और कभी-कभी ही आदमी या इनके दायित्वों की बात सोचेंगी। बहुतनी निरुक्त रोटी कमाने की बात सोचेंगी। उनमें सन्देह नहीं कि वे दोनों चीजें भी जरूरी हैं; लेकिन अगर महिला-विद्यापीठ ने निरुक्त यही अपने विद्यार्थियों को सिखाया है, तो उनसे अपने उद्देश्य को पूरा नहीं किया। अगर किसी विद्यालय का औचित्य है तो वह यह कि वह नचाई, आइसी और न्याय के पक्ष में शूरवीरों को तैयार करे और दुनिया में भेजे। वे शूरवीर दमन और बुराइयों के विरुद्ध निरन्तर युद्ध करें। मुझे उम्मीद है कि आपमें से कुछ ऐसी हैं। कुछ ऐसी भी हैं जो अँधेरी और बुरी घाटियों में पड़ी रहने की वनिस्वत पहाड़ पर चढ़ना और खतरों का मुकाबिल करना पसन्द करेंगी।

लेकिन हमारे विद्यालय पहाड़ पर चढ़ने में प्रोत्साहन नहीं देते। वे तो चाहते हैं कि नीचे के देग और घाटी सुरक्षित रहें। वे मौलिकता

हिन्दुस्तान और वर्तमान महायुद्ध

घटना-चक्र तेजी से चल रहा है। अदम्य प्रेरणा उमे आगे बढ़ाती है और एक घटना दूसरी से आगे बढ़ जाती है। भौतिक शक्तियाँ दुनिया को डर-उपर दौड़ा रही हैं और उन आयोजनाओं को घृणा की दृष्टि से देख रही हैं जिन्हें अधिकार-प्राप्त लोग चलायाना चाहते हैं। आदमी और औरतें भाग्य के हाथ के गिलोने हो रहे हैं और लड़ाई के उबलते भँवर में गिने आ रहे हैं। हम मग्न किधर जायेंगे, और हम मंत्रण का जिसमें कि राष्ट्र अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए बेतहाशा लड़ रहे हैं, क्या होगा, यह कोई नहीं कह सकता। फिर भी हम दुनिया के अपने अध्ययन से कह सकते हैं कि दुनिया हमारी आँगों के सामने नष्ट हुई जा रही है। आगे क्या होगा, यह कोई नहीं जानता।

दुनिया के इस महत्वपूर्ण दुखान्त नाटक में हिन्दुस्तान क्या भाग लेगा? कांग्रेस की कार्य-समिति ने प्रभावशाली और गौरवपूर्ण शब्दों में वह मार्ग बता दिया है, जिसपर हमें चलना है। हालाँकि अंतिम निश्चय अभी तक नहीं हुआ है, फिर भी निश्चय करनेवाले बुनियादी सिद्धान्त बना दिये गये हैं। बुनियादी फैसला तो पहले ही हो गया है और मौजूदा हालातों के अनुसार उमे कौन अमल में लाया जाय, यही बात अभी तय करने के लिए है। उमका अमल में लाना अब तो इस बात पर निर्भर है कि कहाँ तक उन बुनियादी सिद्धान्तों को ब्रिटिश सरकार स्वीकार करती है और अमल में लाती है। मंत्रण में, हिन्दुस्तान अब कभी भी इस बात पर राजी नहीं हो सकता कि वह साम्राज्य का एक भाग रहे, न वह यह चाहेगा कि उमे गुलाम राष्ट्र माना जाय जो दूसरों के हुक्म पर नाचता फिरे। चाहे शान्ति हो या युद्ध, हिन्दुस्तान को स्वतंत्र राष्ट्र की हैसियत से काम करने का हक होना चाहिए।

भारी परीक्षा का समय है। अगर हम इस परीक्षा में असफल हुए तो पीछे रह जायेंगे और दूसरे आगे बढ़ जायेंगे। हम इस दल या उस दल, यह जमात या यह मजहबी दल या वह, या उग्र या नरम पक्ष की परिभाषा में नहीं सोच सकते। सोचना भी नहीं चाहिए। हिन्दुस्तान और दुनिया की आजादी के महान लक्ष्य के लिए राष्ट्रीय संगठन की इस समय जरूरत है। अगर हम अपने मानूली कलहों को जारी रखें, अपने मतभेदों पर जोर दें, एक-दूसरे में बुरे हेतुओं की आशंका करें, और किसी दल या पार्टी के लिए फायदा उठाने की कोशिश करें, तो उससे हमारा ही छोटापन जाहिर होता है, जब कि बड़े मसले खतरे में हैं। उससे तो हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियों को हानि ही पहुँचाई जाती है।

काँग्रेस की कार्यसमिति ने मार्ग बताया है। भारत ने आवाज उठाई है, और उसकी पुकार ने हमारे हृदयों में प्रतिध्वनि पैदा की है। हम सबको उसीपर चलना चाहिए और इस संकट के समय में आवाजाकशी नहीं करनी चाहिए। हरेक काँग्रेसमैन को चाहिए कि सोच-समझकर कुछ कहे या करे, ताकि वह कुछ ऐसा न कहे या करे जिससे राष्ट्र के इरादे में कोई कमजोरी आवे या उससे काँग्रेस की शान कम हो। हम सब एक हैं, एकसाथ बोलते हैं और हिन्दुस्तान के लिए, जिसके प्रेम से अबतक हमने प्रेरणा पाई है और जिसकी सेवा हमारा परमसौभाग्य रहा है, हम एक साथ काम करेंगे। भविष्य हमें इशारा कर रहा है। आइए, आजादी के ध्येय की ओर हम सब एकसाथ बढ़ें !

२१ सितम्बर १९३९।

हिन्दुस्तान में जनतंत्र हुकूमत के तीन पक्ष हो सकते हैं—अनिच्छित सोवियटिज्म या विदेशी शासन के नीचे हिन्दुस्तान का बराबर रहना। इसके सिवाय और किसी पक्ष का मैं विचार नहीं कर सकता। मैं यह मान लेता हूँ कि हम सब इस बात पर एकतराफ हैं कि हिन्दुस्तान में फ्रांसिज्म नहीं चाहते, और न निश्चय ही हम हिन्दुस्तान में विदेशी हुकूमत चाहते हैं। इसलिए हमारे सामने सिर्फ़ एक ही पक्ष सोवियट हुकूमत का रूप रह जाता है जो जनतंत्र तक पहुँच भी सकता है और नहीं भी पहुँच सकता। हाल ही में हिन्दुस्तान में जनतंत्र के आदर्श की बहुत-से लोगों ने आलोचना की है। मैं नहीं जानता कि उन्होंने यह भी सोचा है या नहीं कि उस आदर्श को छोड़ देने का अनिवार्य नतीजा क्या होगा। हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत में मैं जनतंत्र के सिवाय और कोई लक्ष्य नहीं देखता। अल्प-संख्यकों को मुनासिब संरक्षण दे देने से जनतंत्र उसने संबंध रखने वाले हरेक आदमी के लिए सबसे अच्छा होगा। बेशक बहुसंख्यक हमेशा बहुसंख्यक रहेंगे। कोई भी चीज़ बहुसंख्यक समाज को अल्पसंख्यक समाज में तब्दील नहीं कर सकती। हाँ, यह सिर्फ़ फ्रांसिस्ट या फ़्रॉन्ट गिटवन्दी से संभव हो सकता है। जहाँतक मुसलमानों का संबंध है, वहाँ तक बहुसंख्यक और अल्प-संख्यक की परिभाषा में बात करना मुग़लत की बात होगी। एक सात करोड़ का मजहबी जमात अल्पसंख्यक नहीं समझा जा सकता। मुसलमान तमाम हिन्दुस्तान में फैले हुए हैं और कुछ सूबों में उनका बहुमत भी है और ऐसे सूबों में अल्पसंख्यकों का मतलब वाक़ी हिन्दुस्तान के मसले से एकदम भिन्न है।

यह मैं ज़रा भी ख्याल नहीं कर सकता कि ऐसी हालतों में हिन्दू मुसलमानों को सता सकते हैं, या मुसलमान हिन्दुओं पर जुल्म कर सकते हैं; या यह कि हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर मजहबी जमातों के रूप में और किसी पर अत्याचार कर सकेंगे। सिख संख्या में बहुत कम हैं; लेकिन मैं नहीं सोचता कि ज़रा भी मौक़ा इस बात का हो सकता है कि कोई उन्हें सतावे। यह बदकिस्मती की बात है कि इस साम्प्रदायिक सवाल ने यह नई शकल अस्तित्पार करली है और हिन्दुस्तान की आजादी

के रास्ते में रोड़े के रूप में उसका इस्तेमाल किया जा रहा है।

पिछले दो सालों में कांग्रेस और कांग्रेसी सरकारों के खिलाफ मुसलमानों को कुचलने और उनपर जुल्म करने के भारी इल्जामों से मुझे जितना अचरज और दुःख हुआ है, उतना और किसी बात से नहीं हुआ। कांग्रेस सरकारों ने बहुत-से महकमों के संबंध में बहुत-सी भूलें की हैं, जैसा कि स्वाभाविक था; लेकिन व्यक्तिगत रूप से मुझे पूरा यकीन है कि अल्प-संख्यकों के साथ बर्ताव करने में उन्होंने इस बात का ज्यादा-से-ज्यादा ख्याल रखा है कि उनके हक्यों को चोट न आवे। अनिश्चित इल्जामों को निष्पक्ष जांच के लिए हमने कई दफ्ता प्रस्ताव किया है और अभीतक हमारा वह प्रस्ताव कायम है। इस पर भी वैयुक्तियाद बक्तव्य दिए जाने जारी है। जहाँ तक कांग्रेस का संबंध है, वह साम्प्रदायिक या अन्य-मन्थको के सवाल के सब पहलुओं पर विचार करने के लिए आज भी तैयार है, जैसी कि वह हमेशा रही है, जिसने सब आशकाएँ और शक्य हो सकें जाय और नताप-जनक फैसला हो जाय। लेकिन कांग्रेस ऐसी किर्मी भी प्रस्ताव पर विचार नहीं कर सकती जो हिन्दुस्तान की एकता और आज़ादी के खतराफ जाना हो और जो जनतंत्र के आदर्शों की मुन्वालिफत करता हो।

हमारी लड़ाई ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ है। हम अपने किर्मी देशवासी या देश की सन्ध्या से नहीं उठना चाहते, यह हिन्दुस्तान की बदकिम्मती है अगर कोई भी हिन्दुस्तानी या कोई सन्ध्या ब्रिटिश साम्राज्यवाद से सधि करती है। लेकिन मुझे उम्मीद है कि हिन्दुस्तान ऐसी बदकिम्मती से बच जायगा।

ऐसे सकेट का, जैसा कि आजकल है एक बड़ा फायदा यह है कि वे लोगों और सन्ध्याओं को अपना असली रूप दिखाने के लिए मजबूर करने हैं। तब अनिश्चित शब्दों का कहना और बड़ी-बड़ी बातें बनाना, नामुमकिन हो जाता है, क्योंकि उन बातों को अमल में लाना होता है। इस तरह मौजूदा सकेट का नतीजा यह होगा कि हिन्दुस्तान की राजनीति से वह कोहरा दूर हो जायगा जिसकी वजह से सतले गड़बड़

पड़ गए हैं और जनात फजल जायगी कि जंगलों के जोर बढ़ना ही उद्देश्य था है।

कारणों के भविष्य पर कुछ कहना शक्य है। मेरे लिए, मुश्किल है। यह बहुत-सी बातों पर मुनसुफिर है। भविष्य का सीका ही भविष्य में एक भारी बात है। यह भारी बात न होगी, लेकिन जिस भाग में यह फैलना चिन्ता है, यह एक भारी बात है। यह विदित साम्राज्यवाद की सारी मशीनरी के खिलाफ असहयोग का कदम है। इनके महान् परिणाम होने और हम चाहते हैं कि मुक्त उन परिणामों के लिए तैयार रहें। वे परिणाम कब और किस रूप में हमारे सामने आवेंगे, यह इस हालत में बताना मेरे लिए ठीक नहीं है। आज तक जंगल हलाल हैं। उनमें एकदम अलगाव रखना करीब-करीब नामुमकिन है।

और उद्देश्य का अच्छा उत्तर पड़ेगा और इसके लिए वे आत्म-त्याग करने को भी तैयार होंगे। पर जनता के आदर्शों और उद्देश्यों की बार-बार उपेक्षा की गई और उन्हें भंग किया गया। अगर इस युद्ध के जरिये साम्राज्यवादी राष्ट्रों का अपनी मौजूदा स्थिति (यानी उनके साम्राज्य) और स्वार्थों की रक्षा करने का हेतु है, तो हिन्दुस्तान ऐसे युद्ध से कुछ भी वास्ता नहीं रख सकता। पर अगर उसके जरिये लोकतन्त्रवाद और उसके आधार पर विश्व के नियम की रक्षा करनी है तो हिन्दुस्तान का इस युद्ध से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वॉकिंग कमेटी का इसका निश्चय है कि भारतीय लोकतन्त्रवाद के स्वार्थों का संघर्ष ब्रिटिश लोकतन्त्रवाद या विश्व-लोकतन्त्रवाद में नहीं होता। अगर ब्रिटेन लोकतन्त्रवाद की रक्षा करने और उसे बढ़ाने के लिए लड़ रहा है तो उसे चाहिए कि पहले अपने अधिकार के साम्राज्यवाद का अन्त करे, और हिन्दुस्तान में पूर्णरूप से लोकतन्त्रवाद स्थापित करे। और आत्मनिर्भर के सिद्धान्त के अनुसार भारतीय प्रजा को एक विधान-परिषद् के द्वारा अपना विधान बनाने का अधिकार दिया जाय। भारत अपनी ही नीति का मसौदा करे, और इन कार्यों में किसी भी बाहरी अधिकारी का हाथ न हो। स्वतन्त्र लोकतन्त्रवादी हिन्दुस्तान नयी से दूसरे राष्ट्रों के साथ अपने का सम्बन्ध करने के लिए तैयार रहेगा और वह दूसरे राष्ट्रों में अधिक महत्त्व भी करेगा। तब भारत स्वतन्त्र और लोकतन्त्रवाद के आधार पर समार के मजबूत निर्माण में हिस्सा लेगा और मानवजाति की उत्थान के लिए वह समार के जान और माधना में काम लेगा।

इस सम्भव कृत्याप पर जो विषय महत्त्व आया हुआ है वह केवल यूरोप का ही नहीं, मारी मानव-जाति का है और इन युद्धों की तरह यह महत्त्व इन तरह नहीं दृष्ट आया कि मौजूदा समार की पद्धति बनी रहे। ही महत्त्व है कि इन युद्धों में कुछ भय हुआ। इन मनो का मतलब है, सामाजिक या आर्थिक संघर्ष है, ये महा-महायुद्ध के परिणाम हैं। यह महायुद्ध के सामाजिक और आर्थिक संघर्षों का ही मने और प्रत्यक्ष संघर्षों के रूप में ही, समार में निरन्तर-रूप से ही मने विषय या महत्त्व

की एकात्मक रचना किया गया है, क्योंकि विजय की कोई संभावना भी उठने नहीं होगी और उसमें पराजय और फूट या भय फैल जाता है।

भविष्य में भारत का क्या होगा, वह हमारे अन्दाज में बाहर है। यदि भविष्य में संसत्त राष्ट्रीय धर्मिता की आवश्यकता रहती है, तो हम में से अधिकांश के लिए यह कल्पना करना भी मुश्किल है कि बिना राष्ट्रीय फौज और 'धनाय' के अन्य मापनों के भारत स्वतन्त्र होगा। लेकिन वैसे भविष्य पर विचार करने की हमें आवश्यकता नहीं है। हमें तो वस वर्तमान पर विचार करना है।

इन वर्तमान में संदेह और कठिनाइयाँ नहीं उठती; क्योंकि हमारा वर्तमान स्पष्ट है और मार्ग निश्चित है। वह मार्ग भारतीय स्वाधीनता की समस्त रणधरों का निष्क्रिय प्रतिरोध करना है। उसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं है। इसके बारे में हमें बिलकुल स्पष्ट हो जाना चाहिए; क्योंकि विभिन्न दिशाओं में मन के विचलने हानि की दशा में कोई काम शुरू करने का माहम हमें नहीं करना चाहिए। ऐसा कोई दूसरा मार्ग है, जो हमें प्रभावशाली कार्य के अवसर की लक्ष्य-माध्य भी दे सकता है, में नहीं जानता। वास्तव में अगर हम दूसरे मार्ग के बारे में सोचने से तो वास्तविक कार्य ही नहीं सकता।

मेरा विश्वास है कि इस प्रश्न पर अधिकतर कार्यमज्जत एकमत है। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जो कांग्रेस के अंगूठे में हैं। वे दिव्याने के लिए तो एकमत हैं लेकिन करने हमारी तरफ से वे अनुभव करने हैं कि कोई राष्ट्रीय या देश-व्यापी आन्दोलन उस समय तक नहीं चल सकता जबतक कि कांग्रेस द्वारा वह न चलाया जाय। उन्ने छोड़ कर और जो कुछ होगा वह तो दुस्माहम होगा। इसलिए वे चाहते हैं कि कांग्रेस में पूरा लाभ उठावे और माध्य ही उन दिशाओं में भी नके जावे जो कांग्रेस की नीति के विरुद्ध हैं। उनका पन्नाकिन सिद्धान्त तो यह है कि वे कांग्रेस में अगने की मिलाये रहें और फिर उनके बुनियादी धर्म और कार्य-प्रणाली की हानि पहुँचावे, विशेष कर अहिंसा के सिद्धान्त के

किसानों का संगठन^१

भलाई के पक्ष में अपना 'संगठन' दिखाने के लिए दूर-दूर से यहां आने में आपने जो दिलचस्पी दिखाई है, उसकी मैं तारीफ करता हूँ। आज के दिन प्रान्त के विभिन्न केन्द्रों में सैकड़ों सभायें ब्रिटिश सरकार को आपका संगठन दिखाने के लिए हो रही है। सभाओं के पीछे यह भी आग्रह है कि हक आराजी बिल को गवर्नर और गवर्नर जनरल की रज़ामन्दी से बिना अनावश्यक विलम्ब के पास करके क़ानून बना दिया जाय। आपको और कांग्रेस को मिलकर अभी बहुत कुछ करना है और आपको उन घटनाओं पर भी निगाह रखनी है जो घटित हो सकती हैं और जो आपके संयुक्त कार्य को पूरा करने के लिए मार्ग निश्चित कर सकती हैं। कांग्रेस जो कहे, उस पर आप आंख बन्द कर के न चलें,—जैसे कि वह आपके लिए आज्ञा हो,—बल्कि कांग्रेस की सब आज्ञाओं की ऊँच-नीच को आप खुद समझें और तब उन पर अकलमन्दी और मेल की भावना से चलें।

कांग्रेस पंचायत,—कार्यसमिति—ने देश और देशवासियों के, जिनमें आप भी शामिल हैं, पक्ष में रोज़-बरोज़ उठने वाले सब मसलों पर विचार किया है। इस कांग्रेस पंचायत ने जो निर्णय किया है उस पर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों से लेकर ग्राम मण्डल कांग्रेस कमेटियों तक जिनके बिना इतनी बड़ी और शक्तिशाली कांग्रेस संस्था अच्छी तरह से योग्यता के साथ काम नहीं कर सकेगी, सभी मातहत कमेटियों को विचार करना चाहिए और अनुशासन-नियमानुकूलता के साथ उस पर चलना चाहिए।

१ किसान-दिवस पर प्रयाग में दिया गया भाषण।

आपको भी वैसे ही अनुशासन रखना चाहिए और एकता, शक्ति और सफलता का निश्चय कर लेना चाहिए ।

हक़ बाराजी बिल पास हो गया है और मुझे इसमें सुबह नहीं है कि गवर्नर और गवर्नर-जनरल की रजामन्दी भी छोड़े वक्त में आ जायगी । लेकिन गवर्नरों के दस्तखतों से ही सब कुछ नहीं हो जायगा । अगर आपने अपना संगठन न किया और अपने को शक्तिशाली न बनाया तो ज़र्मादार नये नियमों को फाड़-फूड़ कर फेंक देंगे ।

आपको हक़ बाराजी बिल से अपने अधिकारों का सिर्फ़ कुछ हिस्सा ही मिलेगा । सोलहों आना अपने अधिकार पाने के लिए तो आपको बहुत काम करना पड़ेगा । पहला और सबसे खास काम आपका 'संगठन' है ।

आपको यह भी जानना चाहिए कि दुनिया में क्या हो रहा है । भूचालों की तरह दुनिया में घटनायें घटित हो रही हैं । लड़ाई और क्रांतियाँ भूचालों जैसी ही तो हैं । आप यह जानते होंगे कि पच्चीस बरस पहले जैसी बड़ी लड़ाई छिड़ी थी वैसे ही लड़ाई इंग्लैण्ड और जर्मनी के बीच छिड़ी है । पिछले महायुद्ध में हमारे बहुत से देशवासी मरे; लेकिन देग के लिए हमें आजादी नहीं मिली । हमने कहा गया है कि इस लड़ाई में भी हम ब्रिटेन की मदद करें । कांग्रेस ने विचार किया कि इस बारे में वह क्या करे, आया लड़ाई में हिस्सा ले या नहीं । सवाल था कि अगर हमें आजादी नहीं मिलती है तो हम उसमें हिस्सा क्यों लें । अगर लड़ाई साम्राज्यवाद की ही जड़ मजबूत करने के लिए है तो हमें उसमें हिस्सा नहीं लेना चाहिए । हमारी बिना सलाह लिए ब्रिटिश सरकार ने हमें इस युद्ध में सान लिया है । यह एक भारी गलती है । कांग्रेस कार्यमिति ने इस सारे मामले पर गम्भीरता के साथ विचार किया; क्योंकि उतने हमारे देग की करोड़ों जानों का सम्बन्ध है शायद आप पूरी तरह से जानते हैं कि किन-किन बातों पर कार्यमिति ने इस सम्बन्ध में विचार किया है ।

इंग्लैण्ड ने कहा कि पर हमारे देगो भी, जिनमें से कुछ की जर्मनी

ने पहले ही जीत लिया है, आजादी के लिए लड़ रहा है। जर्मनी से हमारी कोई लड़ाई नहीं है; लेकिन हमें उन देशों की आजादी की चिन्ता है जो कि आजादी से वंचित कर दिए गए हैं। चूंकि हम भी ब्रिटेन द्वारा शासित हैं, इसलिए हमारे लिए भी आजादी उतनी ही जरूरी है जितनी दूसरे देशों के लिए। इसलिए ब्रिटेन को हमसे लड़ने के लिए तभी कहना चाहिए जबकि वह गुलामी से हमारे देश को आजाद कर दे। उसकी गुलामी में रह कर अगर हम उसका साथ देते हैं तो इसका मतलब होता है कि हम अपनी ही आजादी के खिलाफ लड़ते हैं। इसी सबब से कांग्रेस ने ब्रिटेन से कहा है कि वह घोषणा कर दे कि इस लड़ाई में उसके उद्देश्य और सिद्धान्त क्या हैं। हम चाहते हैं कि वह न सिर्फ हमारी आजादी की घोषणा करे, बल्कि उस पर अमल करके उसे पूरा भी करे।

ब्रिटिश सरकार ऐसा इस तरह कर सकती है कि वह हिन्दुस्तानियों की एक सच्ची प्रातिनिधिक संस्था बनाए जो हिन्दुस्तान के शासन की जिम्मेदारी अपने हाथ में ले ले। अपनी इस हाल की मांग का कांग्रेस को अभी कोई जवाब नहीं मिला है। उम्मीद की जा सकती है कि दो-तीन सप्ताह में जवाब आ जायगा। लेकिन कोई नहीं कह सकता कि किस तरह का जवाब आयगा। जबतक जवाब नहीं आता, तबतक मौजूदा लड़ाई के सम्बन्ध में वह क्या करे इस बात के निर्णय को स्थगित करने के अतिरिक्त कांग्रेस के पास और कोई उपाय ही नहीं है। न इधर न उधर, वह कुछ भी तय नहीं कर सकती। कांग्रेस की मदद का उस समय तक निश्चय नहीं है जबतक यह पता नहीं चल जाता कि हिन्दुस्तान की स्थिति इस वक्त क्या है।

युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा करने की मांग जो कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से की है, उसे दुनिया के बहुत से देशों ने पसन्द किया है।

वहरहाल, हमें आगे होनेवाले सभी परिवर्तनों के लिए तैयार रहना चाहिए। किसान भी उनके लिए तैयार रहें। इसके लिए संगठन आवश्यक है।

अपने आपसी मतभेदों को घनाए रगकर तो हम दानु की मदद ही करेंगे । जहाँ तक राष्ट्रियता का संबंध है, हिन्दू और मुसलमानों के बीच कोई अंतर ही नहीं होना चाहिए । मसलान्, हक आराजी विल हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए फाइदेमन्द है । कांग्रेस तो हमेशा उन मनलों के लिए लड़ती रही है जो बिना जात-जनात के सवाल के समूचे राष्ट्र के लिए फाइदेमंद है ।

बड़े और घरेलू उद्योग

निजी तौर पर मैं बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास में विश्वास करता हूँ, फिर भी खादी आन्दोलन और बड़े ग्रामोद्योग संगठन का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों से मैंने समर्थन किया है। मेरे विचार से इन दोनों में कोई आवश्यक संघर्ष नहीं है। यों कभी-कभी दोनों के विकास में और कुछ पहलुओं पर संघर्ष हो सकता है। इस मामले में मैं बड़ी हृदयक गांधीजी के दृष्टि-बिन्दु का प्रतिनिधित्व नहीं करता; लेकिन व्यवहार में अबतक हम दोनों के दृष्टि-बिन्दुओं में कभी कोई माफ़े का संघर्ष नहीं हुआ।

यह मुझे माफ़ दीखता है कि कुछ मुख्य और महत्वपूर्ण उद्योग होने तथा उद्योग और जनसाधारण की भलाई के काम। ये बड़े पैमाने पर होने चाहिए। कुछ दूसरे उद्योग हैं, वे चाहे बड़े पैमाने पर हों या छोटे या घरेलू पैमाने पर। घरेलू पैमाने पर उद्योग होने के बारे में मतभेद हो सकता है। इस भेदभाव के पीछे दृष्टिबिन्दु और सिद्धान्त का अंतर है और मि० कुमारस्वामी का जिन प्रकार में समझा है, उन्होंने भी इसी दृष्टिबिन्दु के अन्तर पर जोर दिया था। उनका कहना था कि वर्तमान बड़े पैमाने की पुँजीवादी प्रणाली विनश्यत की समस्या का दरमजूर करती है और उसका आधार अस्थिर पर है। इसके साथ में पूर्णतया सहमत हूँ। उनका मुझसे यह था कि घरेलू उद्योगों के अस्तित्व में विनश्यत अच्छी प्रकार से होता है और इसमें हिंसा का अन्त भी बहुत कम होता है। इसके साथ भी मैं सहमत हूँ; लेकिन इसमें अधिक सचाई नहीं है। वर्तमान आर्थिक ढाँचा वा हिंसा और महाविचार पैदा करता है और सन्तुष्टि को कुछ लोगों के हाथों में सन्तुष्टि कर देता है। बड़े उद्योग से प्रत्याप और हिंसा नहीं

बड़े और घरेलू उद्योग

लिक प्राइवेट पूंजीवादी और फाइनेशियर उनके दुरुपयोग से
 ते हैं। यह सच है कि बड़ी मशीनें आदमी की निर्माण और
 की शक्ति बहुत बढ़ा देती हैं, और उनसे आदमी की भलाई और
 की शक्ति भी बहुत बढ़ती है। मेरे खयाल से पूंजीवाद के आधिक
 हो बदल कर बड़ी मशीनों के दुरुपयोग और हिंसा को दूर करना
 है। जरूरी तौर पर निजी स्वामित्व और समाज के लान के इच्छुक
 से ही प्रतिस्पर्धात्मक हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है। समाजवादी
 ज से यह बुराई दूर हो सकती है और साथ ही बड़ी मशीनों से
 नवाली अच्छाई भी हमें मिल सकती है।

मेरे खयाल से यह सच है कि बड़े उद्योग और बड़ी मशीनें कुछ
 वाभाविक खतरे होने हैं। उसमें शक्ति-संचय की प्रवृत्ति होती है। मुझे
 पकीन नहीं है कि उन्हें एकदम दूर किया जा सकता है; लेकिन मैं किसी
 भी ऐसी दुनिया या प्रगतिशील देश की कल्पना नहीं कर सकता जो बड़ी
 मशीनें का परिष्कार कर सकता है। यदि यह संभव भी हुआ तो उसके
 परिणामस्वरूप पैदावार बहुत कम हो जायगी और इन प्रकार उसमें
 जीवन की रहन-सहन का माप भी बहुत गिर जायगा। यदि कोई देश
 उद्योगीकरण को छोड़ देने की कोशिश करता है तो नतीजा यह होगा
 कि वह देश अधिक तथा अन्य रूपों में उन दूसरे देशों का शिकार
 होजायगा जिनका कि अधिक उद्योगीकरण हो चुका है। घरेलू उद्योगों
 के व्यापक पैमाने पर विकास के लिए स्पष्ट रूप में राजनीतिक
 और आर्थिक मन्ता की आवश्यकता है। यह मुमकिन नहीं है कि एक देश
 जो घरेलू उद्योगों में पूरी तरह से लगा हुआ है, वह इस राजनीतिक
 या आर्थिक मन्ता को कभी मा सकेगा और इसलिए वह उन घरेलू
 उद्योगों को भी आगे न बढ़ा सकेगा जिनको कि वह आगे बढ़ाना
 चाहता है।

इसलिए मैं महसूस करता हूँ कि बड़ी मशीनों के उपयोग और
 विकास को प्रोत्साहन देना और इस तरह हिन्दुस्तान का उद्योगीकरण
 करना जरूरी और मनासिब है। साथ ही मुझे पकीन है कि इस तरीके

पैदा नहीं होती। अगर हो भी तो थोड़े वस्तु के लिए होती है। उसकी जड़ पक्की नहीं होती तबतक उकसाया हुआ आन्दोलन छतरनाक होता है। इसलिए किसानों को कोई चीज ऐसी देनी चाहिए, जो उनकी सब भावनाओं के लिए पूर्ति का काम करे।

२ दिसम्बर, १९३९.

मुनासिब गिदा के अलावा और किसमें हम गान्ति पा सकते हैं और कैसे इन मनस्वीओं का हल निकाल सकते हैं ?

इसलिए अपनी शुभाकांक्षा देने और आपकी मेहनत को तारीफ़ करने में आपके धींच आगया । मुझ जैसे अनाड़ी आदमी के लिए पेचीदा सवालों पर यहां चर्चा करना कहां मुनासिब होगा ? ये पेचीदा सवाल तो विशेषज्ञों के लिए हैं । लेकिन विशेषज्ञ के विशेष रूप से चीजों को देखने के तरीके में एक खतरा है । हो सकता है कि चीजों को देखने में उचित दृष्टिकोण उत्पन्न न रहे और सामूहिक रूप में वह जिन्दगी को देखना भूल जाए । इस खतरे के खिलाफ़ इन्तजान करना होगा. खासतौर से इस वक्त में जबकि जिन्दगी की नींव को ही चुनौती दी जा रही है और वह जगड़े में पड़ी है । शिक्षा के पीछे आपका ध्येय और उद्देश्य क्या है ? ज़रूर ही आप बड़ती पीढ़ी को जिन्दगी के लिए तैयार करते हैं । आप जिन्दगी को किस सांचे में डालना चाहते हैं: क्योंकि अगर उस सांचे की साफ़ तस्वीर आपके दिमाग़ में न होगी तो जो गिजा आप देंगे वह दिखावटी और दोषपूर्ण होगी । उद्देश्य भी उसमें कुछ न होगा और आपको समस्यायें और कठिनाइयाँ बढ़ती ही आयेंगी । आप जहाजी विद्या पर व्याख्यान देने रहेंगे जबकि जहाज डूबता जायगा ।

बहुत जमाने से शिक्षा का आदर्श आदमी की तरक्की करना रहा है । ज़रूरी तौर पर यही आदर्श रहना चाहिए: क्योंकि बिना आदमी की तरक्की के सामाजिक प्रगति नहीं हो सकती । लेकिन आज आदमी को वह चिन्ता भी जनसाधारण को तानने रखकर करनी चाहिए. नहीं तो शिक्षित आदमी अशिक्षित जन-समूह में शर्क हो जायेंगे । और किसी भी हालत में क्या यह मुनासिब या ठीक है कि थोड़े से लोगों को तरक्की करने और बढ़ने का मौका मिले जबकि बहुत से लोग उत्तम वंचित रहे ?

लेकिन इंसान के दृष्टिकोण से भी एक महत्वपूर्ण सवाल का हमें मुकाबला करना है । क्या एक अकेला इन्सान दुर्लभ मौकों को छोड़कर दरअसल आगे बढ़ सकता है, अगर उसके चारों तरफ़ का वायुमण्डल हर

वक्त उसे नीचे खींचता हो ? अगर वह वायुमण्डल उसके लिए दूषित और नुकसानदेह है तो इन्सान का उससे लड़ना बेमूद होगा और लाजिमी तौर पर वह उससे कुचल जायगा ।

यह वायुमण्डल क्या है ? उसमें वे पुस्तैनी विचार, दुराग्रह और वहम शामिल हैं जो दिमाग पर बाँध लगा देते हैं और इस बदलती दुनिया में तरक्की और तब्दीली को रोकते हैं । ये राजनीतिक स्थितियाँ हैं जो अकेले इन्सान और इन्सानों के मजमूए को ऊपर से लादी गई गुलामी में रखती हैं और इस तरह उनकी आत्मा को भूखों मार डालती हैं और और उनकी भावना को कुचल देती हैं । सबसे अधिक, आर्थिक स्थितियों का दबाव है । वे जनता को मीका देने से इन्कार करती हैं । हमारे चारों तरफ दुराग्रह और वहम की जटिलता और राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों का वायुमण्डल फैला है जिसके पंजे में हम फँसे हैं ।

आपकी शिक्षा-प्रणाली सारे नामवर गुण सिखा सकती है; लेकिन जिन्दगी और ही कुछ सिखाती है । और जिन्दगी की आवाज़ कहीं ऊँची और तेज़ है । सहकारी प्रयत्न के लाभ आप बता सकते हैं; लेकिन हमारे आर्थिक ढाँचे का आधार गला काटने वाली प्रतिस्पर्धा पर है और एक आदमी दूसरे को मार कर ऊपर उठना चाहता है । जो अपने प्रतिद्वन्दियों को पछाड़ने में और कुचल डालने में सफल होता है, उमीको चमकदार इनाम मिलता है । क्या इसमें कोई अचरज है कि हमारे युवक उस चमकीले इनाम की ओर बिचे, और दावा करें कि लाभ के इच्छुक इस समाज में उस इनाम का पाना सबसे अधिक वांछनीय गुण है ।

इस देश में हम तो अहिंसा की प्रतिज्ञा में बंधे हैं । फिर भी हिंसा न सिर्फ़ लड़ने-झगड़ने राष्ट्रों के प्रत्यक्ष रूप में ही हमें घेरे हुए है, बल्कि उस सामाजिक ढाँचे के रूप में भी वह हमें घेरे हुए है जिसमें कि हम रहते हैं । इस हिंसा भरे वातावरण में सच्ची शान्ति या अहिंसा उस समय तक कभी भी हासिल नहीं हो सकती, जबतक कि हम उस वायुमण्डल को ही न बदल दें ।

उन आदमियों के वायुमण्डल भी जिन्हें कि हम स्वीकार कर सकते हैं,

साथ-साथ चलती हैं और एक-दूसरे के लिए वे सहायक होनी चाहिए।

हमारा आज का सामाजिक ढांचा ढह रहा है। उसमें विरोधी बातें भरी हैं और वह बराबर लड़ाई और संघर्ष की ओर हमें लिय जा रहा है। लाभ के इच्छुक और प्रतिस्पर्धा में फँसे इस समाज का अंत होना चाहिए और उसकी जगह एक ऐसी सहकारी व्यवस्था आनी चाहिए जिसमें हम अकेले इन्सान के फायदे की बात न सोच कर सब की भलाई की बात सोचें, जहाँ इंसान इंसान की मदद करे और राष्ट्र राष्ट्र मिल कर इंसानों की तरक्की के काम करें; जहाँ पर मानवीय गुणों का मूल्य हो और जमात या समूह या राष्ट्र का एक के द्वारा दूसरे का शोषण न हो।

यदि हमारे आगे आने वाले समाज का यही मान्य आदर्श है तो हमारी शिक्षा भी उसी आदर्श को सामने रखकर ढाली जानी चाहिए और कोई भी बात ऐसी नहीं आनी चाहिए जो सामाजिक व्यवस्था के उस ध्येय के विरुद्ध हो। उस शिक्षा के लिए हमेशा अपने करोड़ों लोगों की परिभाषा में सोचना होगा और किसी दल या जमात के लिए उसके हितों की प्राप्ति नहीं देनी होगी। अध्यापक तब बह नहीं होगा जो कि अपने उस ध्येय की लक्ष्य का फलिर है जिसमें उसे जीविका मिलनी है; बल्कि वह आदमी होगा जो अपने ध्येय का उस पवित्र ध्येय के एक भिन्न-तरंगी की उत्साहपूर्ण भावना में समन्द करेगा जो कि उसकी सम-सम में भरा है।

हाल ही में हिन्दुस्तान में शिक्षा की प्रगति हो और बहुत ध्यान दिया गया है और कामा के मन में उसके लिए उत्साह और उत्प्रेरणा है। आज ही इन दुर्जनता में जिसमें उम्मीद बहुत कम है, यह बड़ी आशा की जा सकती है। इनमें बहुत बड़ा कि आप अनुयायी शिक्षा की नई योजना पर भी विचार करें। जिनका मत है अनुयायी शिक्षा पर माना है उनका ही न उनको बरकत मिलना है। उम्मीद बरकत है कि आप तब तक होंगे, अपने हीरक-रत्न होंगे। श्री कल मुझे समन्द नही कि इस योजना के साथ बहुत एक ऐसा भाव पैदा किया है, जिसमें यदि शिक्षा की लक्ष्य में सामंजस्य

जहाँतक सहानुभूति के साथ सम्बन्ध स्थापन करने का सवाल है, वरसों से सरहदी लोग गांधीजी को वहाँ आने का निमन्त्रण दे रहे हैं। मुझे पक्की है कि कुछ वरस पहले वह सरहदी सूबे में गये भी थे, लेकिन उन्होंने सरहद पार नहीं की। और न ठेठ वहाँतक पहुँचे ही। सरहद के दोनों तरफ़ उनका नाम सभी लोग अच्छी तरह जानते हैं। सरहदी आदमियों में वह बहुत मशहूर हैं और बार-बार उधर आने के लिए उन्हें न्याता दिया गया है; लेकिन सरकार ने उन्हें वहाँ जाने की इजाजत नहीं दी। सरकार की नज़ी के खिलाफ़ वह वहाँ नहीं जाना चाहते। इस मसले पर उन्होंने सरकार से झगड़ा मोल लेना पसंद नहीं किया। इसलिए जब कभी उन्होंने जाना चाहा, तब यह कहकर उन्होंने वाइसराय या भारत-सरकार के सामने यह बात रखी कि—“मुझे वहाँ बुलाया गया है, और मैं वहाँ जाना चाहूँगा।” और हमेशा उन्हें एक ही जवाब मिला, “हमारी ज़ोरदार राय है कि आप वहाँ न जायें।” यह करीब-करीब नानाही के ही बराबर होता है। इसलिए वह नहीं गये। गांधीजी के अलावा सरहदी सूबे के बड़े नेता अब्दुलगफ़्फ़ारखाँ का उस तनाम हिम्मे पर बहुत अन्तर है और वह वहाँ मशहूर भी हैं। यह ताज्जुब की बात है कि वह उस हिम्मे में ऐसी जबरदस्त हस्तों कैसे बन गये? और यही बात काफ़ी थी जिनसे ब्रिटिश सरकार ने उन्हें बेहद नापसंद किया। ऐसे फिदादी पदानों पर भी जिस आदमी का इतना भारी अन्तर है, वह तो ऐसा आदमी होगा जिसे कोई भी सरकारी अफ़सर पसन्द नहीं करेगा। इसलिए वह अपना वक्त जेल में काट रहे हैं। इन वक्त भी वह जेल में हैं। बिना मुकदमा चलाये दो-तीन साल जेल में रह चुकने के बाद वह पिछड़े माल छूटे थे, लेकिन बाहर वह सिर्फ़ तीन महीने ही रह पाये और फिर दो साल की सजा काटने के लिए जेल भेज दिये गये। यही सजा अब वह काट रहे हैं। आप शायद जानते ही कि नबने जैची राष्ट्रीय-कार्यनिति के यह मेम्बर हैं। यह सरहद के ही नहीं बल्कि तनाम हिन्दुस्तान के सबसे लोकप्रिय आदमियों में से एक हैं। उनके नाम ने आप महसूस करेंगे कि यह मुसलमान हैं, हिन्दू नहीं। यह हिन्दुस्तान

अखबारों की आज़ादी^१

मेरे अखबारों की आज़ादी का बहुत ही ज्यादा कायल हूँ। मेरे खयाल में अखबारों को अपनी राय जाहिर करने और नीति की आलोचना करने की पूरी आज़ादी मिलनी चाहिए। हाँ, इसका मतलब यह नहीं होना चाहिए कि अखबार या इन्सान द्वेष भरे हमले किसी दूसरे पर करे या गंदी तरह की अखबार-नवीसी में पड़े, जैसे कि हमारे आजकल के कुछ साम्प्रदायिक पत्रों की विशेषता है। लेकिन मेरा पक्का यकीन है कि सार्वजनिक जीवन का निर्माण आज़ाद अखबारों की नींव पर होना चाहिए।

X

X

X

मगहर राष्ट्रवादी अखबार जिन्होंने अपनी स्थिति बना ली है, वे बड़ी हद तक खुद अपना खयाल रख सकते हैं। उनपर और कोई मुनी-वत आती है तो जनता का ध्यान उनकी तरफ जाता है। मरद भी उन्हें मिलती है। पर जो हाँटे और ऐसे अखबार हैं जिनका नाम धोखा ही है, उनमें सरकार अक्सर ध्यान करती है। क्योंकि उनकी प्रसिद्धि उनकी नहीं है। फिर भी हमारे हाँटे-से-हाँटे और कमखोर-से-कमखान अखबारों को सरकारी दबाव का शिकार होने का खतरा की दात है। क्योंकि ज्यों-ज्यों दबाव पड़ता है त्यों-त्यों दबाव डालने की आदत बढ़ती जाती है और उनमें धीरे-धीरे जनता का मन सरकार द्वारा अपने अधिकारों

१. दमाल की प्रांतीय कांग्रेस समेटी की कार्यसमिति के 'सुगन्तर' पत्र के इतिहास का प्रस्ताव पाल करने तथा दमाल सरकार द्वारा कई पत्रों से जमानत माँगने और संपादन में दखल देने पर 'अनृतवाङ्मय पत्रिका' के संपादक श्री सुमारबान्धि शोध को लिखा गया एक पत्र।

काम नहीं करना चाहिए जब कि हरेक चीज के लिए जो कि जीवन के लिए योग्य है, स्पष्ट विचार और बहादुरी के कामों की जरूरत है। दुनिया गुगगवार नहीं है, इस बात को हम महसूस करें और तब आदमियों की तरफ उमे बदलने की कोशिश करें और अपने मक्के रहने के योग्य उमे अच्छी और ठीक बनायें।

हमारी मौजूदा समस्याएँ

हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत और भविष्य की संभावित गति-विधि पर एक पत्र में नोट के रूप में कुछ लिखना आसान काम नहीं है। लेकिन जैसा कि आप जानते ही हैं इस विषय पर मैं बराबर लिखता और बोलता रहा हूँ। मैं श्री एल्महर्स्ट ने इस विषय में सहमत हूँ कि जहाँ तक राजाओं का संबंध है अगर ब्रिटिश सरकार उनसे अपनी रिपब्लिकों में जनतंत्र सरकार कायम करने के लिए कहे तो वैसा करने के अलावा उनके नामने और कोई रास्ता ही नहीं रहेगा। हालत यह है कि आज राजा लोग, कुछ को छोड़कर, वह भी बड़ी हद तक नहीं, ऐसे हैं कि बिना ब्रिटिश सरकार के सहित सहयोग के कोई काम नहीं कर सकते। इन बरसों में सरकार की राजाओं के बारे में शोचनीय नीति रही है। सरकार ने रिपब्लिकों के हर तरह के प्रतिगामी कामों और दमन का समर्थन किया है। इसने नाफ़ है कि रिपब्लिकों के सम्बन्ध में भी हमारी लड़ाई अनन्तः ब्रिटिश सरकार में है।

बहरहाल, उन वक्त हमारे सामने एक बड़ा मुसला है। आप जानते हैं कि कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार में लड़ाई के उद्देश्यों को ही नाफ़ तौर में बताने के लिए नहीं कहा है, बल्कि हिन्दुस्तान की आजादी और राष्ट्रीय पंचायत के जरिये अपना विधान बनाने का हिन्दुस्तान का अधिकार स्वीकार करने के लिए भी कहा है। जब तक यह बात नाफ़ तौर में लय नहीं हो जाती तब तक और चीरों का कोई मुकाम नहीं है और

१. हिन्दुस्तान की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर पी ई सी. (लंदन) के अध्यक्ष मि० एल० वे० एल्महर्स्ट के लिए शक्तिनिवेदन के डा० सुधीर सेन से भेजा गया पत्र।

हमारी मौजूदा समस्यायें

हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत और भविष्य की संभावित गति-विधि पर एक पत्र में नोट के रूप में कुछ लिखना आसान काम नहीं है। लेकिन जैसा कि आप जानते ही हैं इस विषय पर मैं बराबर लिखता और बोलता रहा हूँ। मैं श्री एल्महस्टेड से इस विषय में सहमत हूँ कि जहाँ तक राजाओं का संबंध है अगर ब्रिटिश सरकार उनसे अपनी रिपासतों में जनतंत्र सरकार कायम करने के लिए बहे तो वैसा करने के अलावा उनके सामने और कोई रास्ता ही नहीं रहेगा। हालत यह है कि आज राजा लोग, कुछ को छोड़कर, वह भी बड़ी हद तक नहीं, ऐसे हैं कि बिना ब्रिटिश सरकार के सहित सहयोग के, कोई काम नहीं कर सकते। इन बातों में सरकार की राजाओं के बारे में शोचनीय नीति रही है। सरकार ने रिपासतों के हर तरह के प्रतिगामी कामों और दमन का समर्थन किया है। इसमें साफ़ है कि रिपासतों के सम्बन्ध में भी हमारी लड़ाई अनन्तः ब्रिटिश सरकार से है।

दहरहाल, इस पत्र हमारे सामने एक बड़ा सवाल है। आप जानते हैं कि कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से लड़ाई के उद्देश्यों को ही मात्र तौर से बताने के लिए नहीं कहा है, बल्कि हिन्दुस्तान की आजादी और राष्ट्रीय पचापन के उद्देश्य अपना विधान बनाने का हिन्दुस्तान का अधिकार स्वीकार करने के लिए भी कहा है। अबतक यह बात मात्र तौर से लय नहीं हो जाती अबतक और चीजों का कोई मतलब नहीं है और

१. हिन्दुस्तान की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर पी. डी. पी. (संलग्न) के अध्यक्ष मि० एल० के० एल्महस्टेड के लिए सान्तिनियेतर के डा० सुधीर सेन को भेजा गया पत्र।

न उनका सवाल ही उठता है। हिन्दुस्तान की आजादी का मतलब जरूरी तौर से ब्रिटेन से एकदम सम्बन्ध तोड़ लेना नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब जरूर है कि हिन्दुस्तान की पृथक सत्ता और अपने भाग्य के निर्णय के अधिकार को पूरी तरह से स्वीकार किया जाय। ब्रिटेन के साथ भविष्य में हमारे क्या सम्बन्ध रहेंगे, यह तय करना राष्ट्रीय पंचायत का काम होगा। अगर ब्रिटेन अब साम्राज्यवादी नहीं रहा है तो कोई सबब नहीं कि हम उनके साथ अधिक-से-अधिक सहयोग न करें। लेकिन शुरू से ही हम पर कोई सम्बन्ध लादने का मतलब है कि निर्णय हमारे हाथ में नहीं है और इसलिए वह स्वीकार नहीं किया जा सकता।

जहाँतक अल्पसंख्यकों का सवाल है हम उन्हें दोनों तरह से ज्यादा से ज्यादा गारंटी देने के लिए तैयार हैं : विधान के आपस में मिलकर तय किये हुए ऐसे मौलिक कानूनों के रूप में ही नहीं जिनमें कि अल्पसंख्यकों का संरक्षण मिले और धर्म, संस्कृति एवं भाषा आदि के नागरिक अधिकार भी प्राप्त हों, बल्कि खुद विधान को बनाने में भी। हमने तो यहाँ तक कह दिया है कि अगर कोई अल्पसंख्यक समाज जुदा निर्वाचन पद्धति के जरिये अपने प्रतिनिधि चुनना चाहता है तो हम उसे मान लेंगे। इसके अलावा सिर्फ अल्पसंख्यक के अधिकारों में ही सम्बन्ध रखनेवाले मामलों में निर्णय उनकी राजमन्दी में होगा, सिर्फ बहुमत के बंटों में नहीं। अगर किसी बार में समाजोत्थान न हो सके तो सामान्य राष्ट्र-मध्य, या डेमोक्रेसी या वैसी ही किसी मस्था ही निर्णय अन्तर्राष्ट्रीय मध्यस्थता पर छोड़ दिया जायगा। उस प्रकार अल्पसंख्यक के अधिकारों को हर तरह का संभावित संरक्षण दे दिया गया है। यह याद रखना चाहिए कि अल्पसंख्यक समाजोत्थान का सम्बन्ध है, उसे अल्पसंख्यक समाज उस देश का मन्दन उन्नतमान करना है। यहाँ तक है कि हिन्दुस्तान के बीच मुवा में उनका बहुमत है। और इन मुवा में उनके संरक्षण का मन्त्रालय ही नहीं है जिनमें उन्हें ज्यादा-से-ज्यादा प्राचीन स्वायत्त शासन प्राप्त होगा। हिन्दुस्तान की आजादी उस तरह नहीं हुई है कि बहुमत करनेवाली बहुमत ही माने और यह कल्पना भी नहीं की जा सकती है

कि दो बड़ी धार्मिक जमातें—हिन्दू और मुसलमान—एक दूसरे को कुचल सकते हैं या एक दूसरे पर अत्याचार कर सकते हैं। छोटे अल्पसंख्यकों की स्थिति जुदा है। लेकिन उनको भी इन संतुलन रखनेवाली बातों से फ़ायदा पहुँचता है। और हर हालत में उनकी रक्षा की जानी चाहिए, जैसा कि ऊपर कहा गया है।

ये बातें इस धारणा पर कही गई हैं कि यहाँ एक दूसरे के प्रति दुर्भाव है और धार्मिक वर्ग की बुनियाद पर काम होगा। लेकिन यह मुमकिन नहीं है कि जब हिन्दुस्तान राजनीतिक और आर्थिक समस्या हल करने में लगे तब इस रीति से काम हो। तब विभाग आर्थिक बुनियाद पर होगा धार्मिक आधार पर नहीं।

अगर सारे अल्पसंख्यकों के सवाल को फ़ैलाकर देखा जाय तो मालूम होगा कि यह राजनीतिक प्रतिगामियों और सामन्तवादी तत्वों के जरिये हिन्दुस्तान की आजादी की प्रगति को रोकने की कोशिश है। हमेशा की तरह ब्रिटिश सरकार ने न सिर्फ़ इसका पूरा फ़ायदा ही उठाया है, बल्कि इस तरह के हरेक फूट फ़ैलानेवाले और प्रतिगामी तत्व को प्रोत्साहन किया है, और अब भी दे रहे हैं। हिन्दुस्तान की समस्या पर विचार करने का आधार सिर्फ़ वही है जो काँग्रेस ने बताया है यानी हिन्दुस्तान की आजादी और राष्ट्रीय पंचायत की मांग को मंजूर कर लिया जाय। इस दरमियान जनता की रजामन्दी से कानून में कोई बड़ी तब्दीली किये बग़ैर ज्यादा-से-ज्यादा उदार साधन से भारत सरकार को चलाने के लिए फ़ौरन कार्रवाई होनी चाहिए; लेकिन यह बीच का बरसा बहुत लम्बा नहीं होना चाहिए। और तब्दीली करने के लिए जितना भी जल्दी-से-जल्दी मुमकिन हो क़दम उठाना चाहिए।

हमने सलाह दी है कि राष्ट्रीय पंचायत का चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर होना चाहिए। यह बात हमारे लिए बहुत महत्व रखती है क्योंकि उस तरीके से हम असली आर्थिक कार्यक्रम सामने ला सकते हैं और साम्प्रदायिक समस्याओं को, जोकि जरूरी तौर पर मध्यमवर्ग की हैं, सुलझा सकते हैं। बालिग मताधिकार पर आपत्ति की गई है; क्योंकि

वह व्यापक अधिक होगा। यह आपत्ति अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा दूर की जा सकती है। उस हालत में प्राइमरी मतदाता निर्वाचक मंडल का चुनाव करेंगे और फिर राष्ट्रीय पंचायत के सदस्यों को चुनेंगे।

इस मामले को गड़बड़ी में न डालने के लिए यह जरूरी है कि रियासतों का सवाल इस अवस्था में हाथ में न लिया जाय। यह नियम बना दिया जाय कि राष्ट्रीय पंचायत में कोई भी रियासत हिस्सा ले सकती है बशर्ते कि वह उस जनतन्त्र के आधार पर हिस्सा ले जिसपर कि वाक़ी हिन्दुस्तान ने लिया है। इस मामले में दबाव डालने की जरूरत नहीं है। घटनाओं का दबाव ही काफ़ी होगा। रियासतों की जनता का भी दबाव होगा। बहुत मुमकिन है कि अधिकांश रियासतें ब्रिटिश हिन्दुस्तान के साथ हा जायें और राष्ट्रीय पंचायत में शरीक हों। यह भी मुमकिन है कि एक दर्जन या उनसे ही बड़ी रियासतें कुछ अर्थ तक अलग रहें। उनकी समस्याओं पर बाद में विचार किया जा सकता है। अगर हम बहुत आगे बढ़ेंगे तो इन बड़ी रियासतों के साथ समझौता करने में कोई बड़ी कठिनाई होने की सम्भावना नहीं है। बेशक यह सब ब्रिटिश सरकार के इस नीति में पूरी तरह से सहयोग देने पर निर्भर करना है। अगर कोई मस्यौदा तैयार है तो यह कहना मुश्किल है कि तर्जिमा क्या होगा। यह तो है कि लड़ाई बड़े पैमाने पर होगी और कुछ अर्थ तक हिन्दुस्तान में फूट और अव्यवस्था फैल जायगी।

एक बात और है जो आपके सामने रखना चाहता हूँ। लड़ाई के बढ़ने में हमने यह बात ज्यादा-से-ज्यादा महसूस की है कि यह साम्राज्यवादी देशों के लिए लड़ी जा रही है। साम्राज्यवादों के बीच मस्यौदा और तबतक यह बात साफ़ नहीं हो जाती कि लड़ाई किस बेहतर बात के लिए लड़ी जा रही है तब तक हिन्दुस्तान के लिए यह सम्भव नहीं है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का बचाने के लिए उसमें शरीक हों।

शायद यह सब भी, अगर आप उसे एग्जम्प्ट को भेज दें, पर विचारों का कुछ आँकड़ा करणा। मेने फेडरल-केन्द्र के मंत्रमण-काल पर विचार नहीं किया है। बशर्ते यह मस्यौदा तैयार है कि मंत्रमण-काल में यह तबतक के पक्ष-प्रदर्शन में चलेगा।

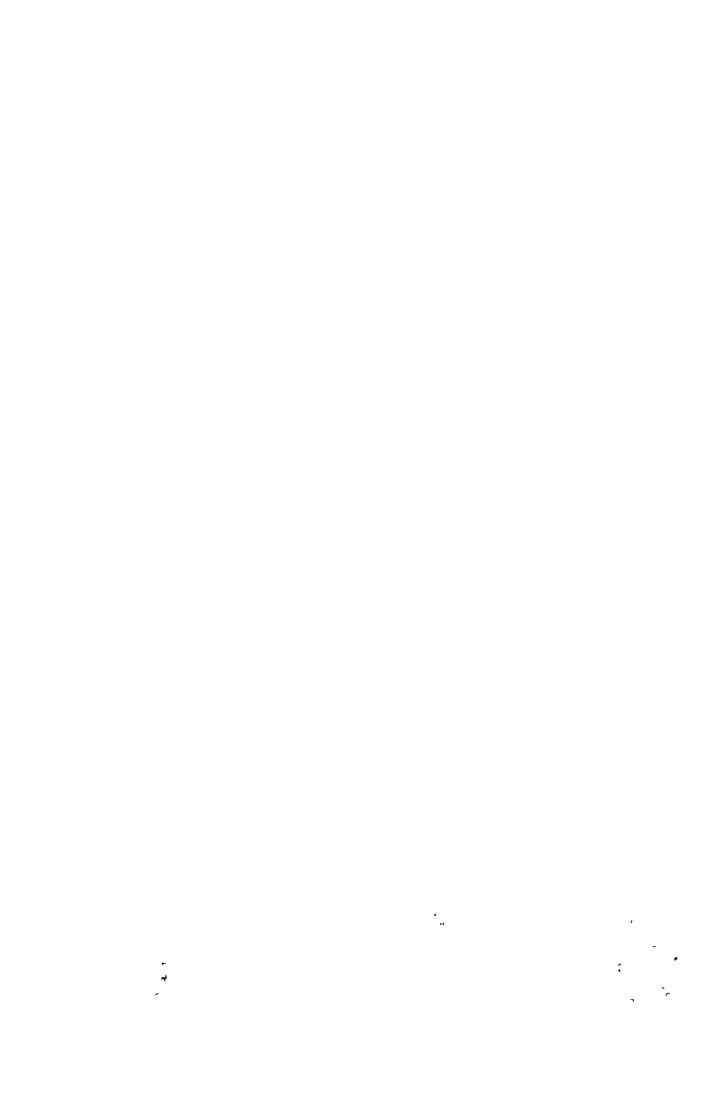
सस्ता साहित्य मण्डल : सर्वोदय साहित्य माला के प्रकाशन

[नोट—X चिह्नित पुस्तकें अप्राप्य हैं]

पुस्तक	लेखक	
१. दिव्य-जीवन	स्वेट माडॅन	१८)
२. जीवन-साहित्य	काका कालेलकर	१७)
३. तामिल वेद	ऋषि तिरुवत्तुवर	१७)
४. भारत में ध्यस्तन और व्यभिचार : वैजनाथ महोदय		११८)
५. सामाजिक कुरीतियांX		१७)
६. भारत के स्त्री-रत्न [तीन भाग] शिवप्रसाद पण्डित		३)
७. अनोखाX		११८)
८. ब्रह्मचर्य-विज्ञान	जगन्नारायण देव शर्मा	११८)
९. यूरोप का इतिहास	रामकिशोर शर्मा	२)
१०. समाज-विज्ञान	चन्द्रराज भण्डारी	१७)
११. खहर का संपत्ति-शास्त्रX		११८)
१२. गोरों का प्रभुत्वX		११८)
१३. चीन की आवाजX		१७)
१४. दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह	महात्मा गांधी	१७)
१५. ब्रिजयी बारडोल्लीX		२)
१६. अनौति की राह पर	महात्मा गांधी	११८)
१७. सीता की अग्नि-परीक्षा	कालीप्रसन्न घोष	१७)
१८. बान्या-शिक्षा	स्व० चन्द्रशेखर शास्त्री	७)
१९. कर्मयोग	श्री अश्विनीकुमार दत्त	
२०. बतवार की बरतूत	महात्मा टाल्टटाव	
२१. व्यावहारिक सभ्यता	गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'	
२२. अंधेरे में उजाला	महात्मा टाल्टटाव	

२३. स्वामीजी का बलिदानX		१७
२४. हमारे जमाने की गुलामीX		११
२५. स्त्री और पुरुष	महात्मा टाल्स्टाय	११
२६. सफ़ाई	गणेशदत्त शर्मा	१२
२७. क्या करें ?	महात्मा टाल्स्टाय	११
२८. हाथ की कताई-बूनाईX		११
२९. आत्मोपदेशX	एपिक्टेटस	११
३०. यथार्थ आदर्श जीवनX		११
३१. जब अंग्रेज नहीं आये थेX	(देखो नवजीवनमाला)	३
३२. गंगा गोविन्दसिंहX		११
३३. श्री रामचरित्र	चिन्तामणि विनायक बंद्य	११
३४. आश्रम-हरिणी	वामन मल्हार जोशी	११
३५. हिन्दी मराठी कोषX		३
३६. स्वाधीनता के सिद्धान्तX		११
३७. महान् मातृत्व की ओर	नायूराम शुकल	११
३८. शिवाजी की योग्यता	गो० दा० तामसकर	१२
३९. तरंगित हृदय	आचार्य अमयदेव	११
४०. हाल्लण्ड की राज्यक्रांतिX [नरमेघ]		११
४१. दुखी दुनिया	राजगोपालाचार्य	१२
४२. सिन्धा लाशX	महात्मा टाल्स्टाय	११
४३. आत्मकथा (नवीन मन्त्रा संस्करण) महात्मा गांधी		११
" (संक्षिप्त संस्करण : कोमं के लिए)		११
४४. जब अंग्रेज आयेX		११
४५. जीवन-विकास	मदाशिव नारायण शतार	११
४६. किसानों का विगुलX		३
४७. फांसी	विक्टर ह्यूगो	१२
४८. अनानकितयोग और गीताबोधX (देखो नवजीवन माला)		१२
४९. स्वर्ण-विद्वानX		१२

विश्वास ही नहीं रखते। ऐसे आदमी बहुत-से हैं जो हिंसात्मक तरीकों में और प्रांति में विश्वास करते हैं; लेकिन मेरा खयाल है कि वे आदमी भी जो पहले आतंकवादी कामों में विश्वास करते थे, अब वैसा नहीं करते, यानी, पुराने आतंकवादी या उनमें से बहुत-से अब भी सोचते हैं कि सभी संभावनाओं में शासक सत्ता से लड़ने के लिए सगस्त्र बल-प्रयोग की जरूरत हो सकती है; लेकिन वैसे वे बलवा, बल-प्रयोग या किसी तरह के संगठित विद्रोह की ही परिभाषा में सोचते हैं। अब वे बम फेंकने या आदमियों को गोली मार देने की बात नहीं सोचते। मेरे खयाल से बहुत-से तो गांधीजी के अहिंसा के आंदोलन की वजह से आतंकवादी आंदोलन से एकदम दूर हट गये हैं। जो रहे, वे भी निरे आतंकवादी खयाल के नहीं रहे, जोकि, जैसा आप जानते हैं, राजनैतिक आन्दोलनों में एक बड़ा बच्चा का-सा खयाल है। जब एक राष्ट्रीय आन्दोलन गुरु होता है तो उसकी जड़ में जोग, बेवसी और नायूसी होती है, जो भड़के हुए जवानों को आतंकवादी काम करने के लिए मजबूर कर देती है; लेकिन ज्यों-ज्यों आंदोलन बढ़ता जाता है और मजबूत होता जाता है, त्यों-त्यों आदमियों की ताकत एक संगठित काम करने में, सानूहिक-आंदोलन चलाने वगैरा में, लगती है। ऐसा ही हिन्दुस्तान में हुआ है, और फलस्वरूप आतंकवादी आंदोलन करीब-करीब खत्म होगया है। लेकिन बंगाल में जो खौफनाक मज्जिया की जा रही है उन्हीने उन्ही पुराने आतंकवादियों के बल की आँखे बदला लेने के लिए खोल दी है। मिनाल के तौर पर, एक शरम जब अपने दोस्तों पर अपने ही शहर में बड़ी खौफनाक बातें होने देखता है, तो उनका मूक खींचने लग जाता है। संभव है उन्ही अत्याचारों का वह अकेला आदमी या दो-तीन मिलकर बदला लेना निश्चय करते हैं। मगध के रूप में उनका आतंकवाद से कोई सरोकार नहीं है। वह तो एकदम बदला लेने के लिए शर्मी पारंपारी है। ऐसे आतंकवादी काम बनी-बनी होते हैं, लेकिन, जैसाकि मैंने कहा, पिछले दो सालों में यह भी नहीं हुआ। फिर पुराने आतंकवादियों की पुलिस अरली तरह से जानती है। उनमें से बहुत-से तो बाहर निकाल दिये गये हैं या जेल में डाल दिये गये हैं,



जान भी बच नहीं सकती। मेरी समझ में नहीं आता कि जो आदमी अपनी जिन्दगी की बाजी लगाने के लिए तैयार है, वह फ़ौजी कानूनों से, जो उसके खिलाफ़ लगाये जा सकते हैं, कैसे भयभीत किया जा सकता है ? वह तो जानता है कि जब वह अपना आतंकवादी काम करता है, तब उसका मरना भी निश्चित है। आमतौर पर वह अपनी जेब में थोड़ा-सा उधर ले जाता है और काम करने के बाद उसे खा लेता है। होता क्या है; बेचारे बहुत-से भोले-भाले बेक़मूर आदमियों को मुत्तियत आती है।

छठा सवाल है—

‘इस मुल्क के आदमी किस तरीक़े से मदद कर सकते हैं ? आपके विचार में मेल-जोल करनेवाला कोई दल कितना काम कर सकता है ?’

इन सवाल का जवाब देना आसान नहीं है, हालाँकि बहुत-सी जगहों पर मैंने इसका जवाब दिया है—क्योंकि किस तरीक़े से मदद कर सकते हैं, यह यहाँ की बदलती हालतों पर निर्भर है; लेकिन निश्चय ही बहुत-कुछ किया जा सकता है, अगर लोग हिन्दुस्तान की समस्याओं में जितनी उलझते हैं, उतनी दिलचस्पी लें और हिन्दुस्तान और दुनिया दोनों के दृष्टिकोणों को सामने रखकर सोचें कि उनके लिए ठीक हल की आवश्यकता है। मैं नहीं जानता कि मौजूदा हालतों में अकेले दलों का कुछ प्रभाव पड़ सकता है। यानी अकेले दल सरकार की नीति को नहीं बदल सकते, हालाँकि सामूहिक दलों से वे उम्मेद कुछ हेरफेर कर सकते हैं। लेकिन आपके जैसे दल हिन्दुस्तान के हालात को हमेशा यहाँ लोगों के सामने रख सकते हैं। मिमाल के नीचेपर लीजिए। अब भी अख़्तरीय तौर पर नहीं जानते कि हिन्दुस्तान में किसनी मरिचियाँ हो रही हैं और हिन्दुस्तानियों को उनकी सामाजिक स्थितियों में कैसे बचिन किया जा रहा है। मुझे बतलाया गया है कि कोई एक महीना पहले पार्लियामेंट में राजनैतिक पार्टियों के बारे में कुछ कहा गया था। कुछ लोग मेम्बरों से सवाल उठाया था और कुछ कब्ज़दारीवादी मेम्बरों ने जवाब दिए थे—

‘आदर बना रहते हैं किना अब भी हिन्दुस्तान में राजनैतिक बँदी है ?’

व्यों, बल्कि, जैसा मैं सोचता हूँ कोई कह सकता है, नागरिक स्वतंत्रता और उसके साथ दूसरे मामलों के प्रश्न पर तनाम मानव-जाति को मदद कर सकता है।

‘रिकंसीलियेशन दल’ के बारे में मुझसे कहा गया है कि वह कोई संगठन नहीं है; बल्कि एक दल है जिसकी कोई निश्चित मर्यादाएँ नहीं हैं। ऐसे दल ने, मेरा ख्याल है, पिछले दिनों अच्छा काम किया है और मैं समझता हूँ कि वह निश्चय ही आगे भी अच्छा काम कर सकता है। मैंने सलाह दी है कि सामूहिक रूप में हिन्दुस्तान के बारे में या किन्हीं खास तबालों में, जैसे नागरिक स्वतंत्रता का तबाल, दिलचस्पी रखने वाले जुदा-जुदा दलों के लिए यह उचित होगा कि वे एक-दूसरे के संपर्क में रहें। अपने मुहल्लिलिफ़ ख्यालात होने की वजह से अगर वे एक-दूसरे में मिल नहीं सकते तो कोई बात नहीं है। यह जरूरी नहीं है कि एक दल दूसरे दल के दृष्टिकोण को लेकर चले। यह भी नहीं कि एक दल अपने लिए वही मान्यताएँ पैदा करले जो दूसरे दल ने अपने लिए पैदा करली हैं; लेकिन फिर भी उन दोनों में बहुत-सी समानताएँ हो सकती हैं। कभी-कभी वे आपस में मिलें या उनके प्रतिनिधि आपस में सलाह-मशविरा करें, जिससे उनकी कार्रवाइयाँ एक-दूसरे के ऊपर न आजायँ बल्कि एक-दूसरे की पूरक हों।

आखिरी और सातवाँ तबाल है—

“क्या भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को कोई क्रियाशील एजेंसी लंदन में नहीं रखनी चाहिए, जो ठोकर-ठोकर खबरें फैलाती रहे ?”

मैं सोचता हूँ यह बहुत अच्छी चीज़ होगी और उम्मुलन कोई भी इत्तफ़ा विरोध करेगा, इत्तमे मुझे शक है। आपको याद रखना चाहिए कि पिछले छः बरसों में हिन्दुस्तान बड़ी मुनीबतों में ने होकर गुजरा है। उन छः बरसों में चार बरस तक अंग्रिस एक गैरकानूनी जमान रही। हम हमेशा गैरकानूनी टूलचल के फिनारे ही चक्कर लगाते रहते हैं। जीत जाते, फिल्लि प्रड़ी गैर-मानून करार दे दिये जायँ, हमारे जोष खून हो जायँ, हमारी जायशद खून होजाय और पद छिन जायँ। इनलिए

दुनिया की हलचलें और हिन्दुस्तान

बार-बार की हलचलों और घरेलू मुसीबतों में वेहद फँसे रहने के कारण पश्चिमी देशवाले अगर हिन्दुस्तान की तरफ़ ज्यादा ध्यान नहीं दे पाते तो इसमें आश्चर्य क्या है ? कुछ भले ही हिन्दुस्तान के अनमोल अतीत को और खिंचें और उसकी प्राचीन संस्कृति की सराहना करें, कुछ आजादी के लिए खून बहाते लोगों के साथ हादिक सहानुभूति महसूस करें, दुस्तरों में मानवोपयोगी भावनाएँ उठें और वे साम्राज्यवादी सत्ता द्वारा एक बड़े महान् राष्ट्र के शोषण और हैबानी व तंगदस्ती की निन्दा करें; लेकिन ज्यादातर लोग ऐसे हैं जो हिन्दुस्तान की हालतों से एकदम अनजान हैं। उनकी अपनी ही मुसीबतें क्या थोड़ी हैं ? उन्हें वे और क्यों बढ़ावें ?

फिर भी सार्वजनिक मामलों में दखल देनेवाला चतुर आदमी जानता है कि मौजूदा दुनिया के मतलों को बन्द कमरों में नहीं रक्खा जा सकता। अलहदा-अलहदा, बिना एक-दूसरे का विचार किये, उनपर कामयाबी के साथ विचार नहीं किया जा सकता। वे एक-दूसरे से जुट जाते हैं और आखिर में जब देखा जाता है तो वह एक दुनियाभर का मतला बन जाता है, जिसके जुदा-जुदा पहलू होने हैं। पूर्वी अफ्रिका के रेगिन्नानों और उबड़े प्रदेशों की घटनाओं की गूँज इन चासलरी में सुनाई देती है और उनकी भारी छाया यूरोप पर पड़ती है। पूर्वीय नाइवेरिया में चली गेली सारी दुनिया में आग लगा सकती है। अफ़्ग़ानिस्तान की घटनाएँ आज यूरोप को तंग कर रही हैं। फिर भी एक यह है कि भविष्य का इतिहास सच्ची दृष्टि में चीन और हिन्दुस्तान को आज से कल्पना करनेवाले मानेगा कि दुनिया की घटनाएँ

नाओं के निर्माण में उनका बड़ा गहरा असर पड़ेगा। हिन्दुस्तान और चीन जल्द ही तीर पर दुनिया-भर की समस्याएँ हैं। उन्हें दरगुज्ज करना या उनकी महत्ता कम करना दुनिया के घटना-चक्र का अज्ञान बढ़ाना है। इससे वह बुनियादी बीमारों भी पूरी तरह से समझ में नहीं आवेंगी, जिससे हम सब पीड़ित हैं।

हिन्दुस्तान की समस्या भी इस तरह आज की समस्या है। उनके बीते दिनों की सराहना करने या निन्दा करने ने हमें कोई मदद नहीं मिलती। मदद सिर्फ उन्नी हद तक मिलती है जहाँ तक कि बीते दिनों की बातें समझने से और मौजूदा बातें समझने में नहूलियत हो जाती है। हमें महसूस करना चाहिए कि अगर कोई बड़ी घटना वहाँ घटेगी, तो दुनिया पर भी उनका भारी असर पड़ेगा और हममें से कोई भी, हम चाहे कितनी ही दूर क्यों न रहे, चाहे किनी भी राष्ट्र या हमारे में निष्ठा रखने हों, बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकता। इसलिए उन विषय दृष्टिकोण से इस तरह यह मोचकर विचार करना चाहिए कि तात्कालिक समस्याओं का, जो आज हमारे सामने हैं, यह एक अंग है।

सब जानते हैं कि हिन्दुस्तान पर डेढ़ सौ वर्ष से ज्यादा से शासन करने में अंग्रेजों की विदेशी और घरेलू नीति पर बड़ा भारी असर पड़ा है। हिन्दुस्तान के घन-सोपण से औद्योगिक क्रांति के शुरू के दिनों में अपने उद्योगों को बढ़ाने के लिए इंग्लैंड को आवश्यक पूंजी मिली। उनके नैयार माल के लिए बाजार भी मिला। नैपोलियन की लड़ाइयों और क्रिमियन-युद्ध से भी हिन्दुस्तान जड़ से था और उनके रान्तों को संरक्षण में रखने की इच्छा से ही इंग्लैंड की मिन और मध्य-पूर्वी मुल्कों में दखलदराजी करनी पड़ी। रान्तों पर अधिकार रखने की नीति लडाई के बाद की दुनिया में भी चलती रही और अब भी इंग्लैंड आग्रह पूर्वक इन रास्तों से चिरटा हुआ है। महायुद्ध के बाद फॉरन ही अंग्रेज राजनीतिज्ञों के दिमाग में एक शानदार त्वाव आया कि एक विस्तृत मध्य-पूर्वी राज्य कायम करे, जो कुस्तुननुनिया से हिन्दुस्तान तक फैला हो लेकिन सोवियट रूस और कमालपाशा की वजह से और फॉरन से निजासाह

और अफ़गानिस्तान में अमानुल्ला के उत्थान और सीरिया में फ्रांस के शासनादेश के कायम होने से यह हवावा पूरा न हो सका। हालांकि वह बृहद् विचार कोई शकल अस्तित्व न कर सका, फिर भी इंग्लैंड हिन्दुस्तान के खुशकी के रास्तों पर काफ़ी क़ब्ज़ा किये रहा और इसी कारण मोसल के प्रश्न पर टर्की के संघर्ष में आया। इसी अधिकार की नीति की वजह से इंग्लैंड को प्रोत्साहन मिला कि इथोपिया में अनायास ही वह राष्ट्र-संघ का सर्वेसर्वा बन जाय। इंग्लैंड की नैतिक भावना उस समय इतनी नहीं जगी थी, जब मंचूरिया में संघ का मज़ाक बनाया गया था।

दुनिया की समस्या आखिर साम्राज्यवाद—वर्तमान आर्थिक साम्राज्यवाद—की है। इस समस्या का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यूरोप तथा दूसरी जगहों में फ़ासिज्म फैला है, सोवियट रूस का उत्थान हुआ है, ताक़त बड़ी है और उसने एक ऐसी नई संस्था का प्रतिनिधित्व किया है जो खास तौर से साम्राज्यवाद की विरोधी है। यूरोप के मुखालिफ़ और फ़ासिस्ट-विरोधी दलों में बँट जाने से लड़ाई अब साम्राज्यवाद की और उन नये दलों की हो गई है जो उसे ख़तरे में डालने की धमकी देते हैं। औपनिवेशिक और अधीन देशों में इसी जगड़े ने आजादी के लिए लड़नेवाले राष्ट्रवादी आन्दोलन की शकल अस्तित्व कर ली है। बढ़ते हुए सामाजिक मतले राष्ट्रवाद को और उभारते रहते हैं। अपने अधीन औपनिवेशिक राज्यों में साम्राज्यवाद फ़ासिस्ट तरीक़े पर काम करता है। इस तरह इंग्लैंड घर पर प्रजातन्त्रीय विधान की शान बघारते हुए हिन्दुस्तान में फ़ासिस्ट उन्तूलों के मुताबिक़ चल रहा है।

यह साफ़ है कि कहीं भी जब साम्राज्यवादी मोरचा भंग होता है तो उसकी प्रतिक्रिया तमाम दुनिया पर होती है। यूरोप में या और कहीं फ़ासिज्म की जीत से साम्राज्यवाद की मज़बूती होती है, जिसकी प्रतिक्रिया सब जगह होती है। उसमें ग़फलत होने से साम्राज्यवाद कमज़ोर होता है। इसी तरह औपनिवेशिक या अधीन मुल्क में आजादी के आन्दोलन की जीत से साम्राज्यवाद और फ़ासिज्म की धमका लगना

नाओं के निर्माण में उनका बड़ा गहरा असर पड़ेगा। हिन्दुस्तान और चीन जल्द ही तीर पर दुनिया-भर की समस्याएँ हँ। उन्हें दरगज़र करना या उनकी महत्ता कम करना दुनिया के घटना-चक्र का अज्ञान बढ़ाना है। इससे वह दुनियादी बीमारी भी पूरी तरह से समझ में नहीं आयेगी, जिससे हम सब पीड़ित हैं।

हिन्दुस्तान की समस्या भी इस तरह आज की समस्या है। उनके बीते दिनों की सराहना करने या निन्दा करने में हमें कोई मदद नहीं मिलती। मदद सिर्फ़ उनी हृद तक मिलती है जहाँ तक कि बीते दिनों की बातें समझने से और मौजूदा बातें समझने में महूलियत हो जाती है। हमें महसूस करना चाहिए कि अगर कोई बड़ी घटना वही घटेगी, तो दुनिया पर भी उनका भारी असर पड़ेगा और हमसे भी कोई भी, हम चाहे कितनी ही दूर क्यों न रहे, चाहे किसी भी राष्ट्र या हमारे में निष्ठा रखने हों, बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकना। इसलिए इस विषय दृष्टिकोण में हमसे यह मोचकर विचार करना चाहिए कि तात्कालिक समस्याओं का, जो आज हमारे सामने हैं, यह एक अंग है।

सब जानते हैं कि हिन्दुस्तान पर डेढ़ सौ वर्षों में ज्यादा से सामन करने में अंग्रेजों की विदेशी और घरेलू नीति पर बड़ा भारी असर पड़ा है। हिन्दुस्तान के धन-शोषण में औद्योगिक क्रान्ति के शुरु के दिनों में अपने उद्योगों को बढ़ाने के लिए इंग्लैंड को आवश्यक पूंजी मिली। उनके नैयार माल के लिए बाजार भी मिला। नेपालियन की लड़ाइयों और क्रिमियन-युद्ध में भी हिन्दुस्तान जड़ में था और उसके रान्तों को संरक्षण में रखने की इच्छा में ही इंग्लैंड को मिला और मध्य-यूरोप मन्को में दखलदराजी करनी पड़ी। रान्तों पर अधिकार रखने की नीति लडाई के बाद की दुनिया में भी चलनी रही और अब भी इंग्लैंड आग्रह पूर्वक इन रास्तों से चिपटा हुआ है। महायुद्ध के बाद फौरन ही अंग्रेज राजनीतिज्ञों के दिमाग में एक मानदार न्वाव आया कि एक विन्तुन मध्य-यूरोप राज्य कायम करे, जो कुन्तुनदुनिया में हिन्दुस्तान तक फैला हो लेकिन सोवियट रूस और कमालपाशा की वजह से और फारस में रिजाशाह

है, और इसलिए यह बात आसानी से समझ में आ जाती है कि नाज़ी नेता क्यों भारतीय राष्ट्रवाद पर नाराज़ी जाहिर करते हैं और अपनी पसंदगी दिखाते हैं कि हिन्दुस्तान अंग्रेज़ी शासन के अधीन ही रहे। इस समस्या पर अगर उसके बुनियादी पहलुओं से विचार किया जाय तो वह मामूली समस्या है; परन्तु फिर भी दुनिया की तरह-तरह की शक्तियों के चक्कर में पड़कर वह कभी-कभी बड़ी पेचीदा बन जाती है। जैसे कि जब दो साम्राज्यवाद एक-दूसरे का विरोध करने लगते हैं और दूसरे के अधीन देशों में राष्ट्रवादी या फ़ासिस्टविरोधी प्रवृत्तियों का शोषण करना चाहते हैं। इन पेचीदगियों से निकलने का सिर्फ़ एक रास्ता यही है कि उनके खास पहलुओं पर विचार किया जाय और अस्थायी फ़ायदा उठाने के लिए मौकों से ललचाया न जाय, नहीं तो अस्थायी फ़ायदा बाद में बड़ा नुक़सान देनेवाला साबित होगा और बोज़ होगा।

हिन्दुस्तान ऐतिहासिकता और महत्ता की दृष्टि में आधुनिक साम्राज्यवाद का पहले दरजे का मुल्क रहा है और है। अगर हिन्दुस्तान पर साम्राज्यवादी अधिकार में ज़रा भी विघ्न पड़ता है तो उसका दुनियाभर की स्थिति पर गहरा असर पड़ेगा। ग्रेट ब्रिटेन की दुनिया की स्थिति में अजीबोगरीब हालत हो जायगी और उसमें दूसरे औपनिवेशिक मुल्कों के आज़ादी के आंदोलनों का बड़ी ताकत मिलेगी और इस तरह साम्राज्यवाद का हिला दिया जायगा। आज़ाद हिन्दुस्तान ज़रूर ही अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में ज्यादा हिस्सा लेगा, वह हिस्सा दुनिया में शान्ति पैदा करने और साम्राज्यवाद और उसके अंगों का विरोध करने के लिए होगा।

कुछ लागू मानने दें कि हाँ, सकना है हिन्दुस्तान अंग्रेज़ों के राष्ट्र-दल का एक स्वतन्त्र राज्य होजाय, जैसे कनाडा और आस्ट्रेलिया है। यह तो एक अजीबोगरीब विचार लगता है। मौजूदा स्वतन्त्र राज्य भी ग्रेट-ब्रिटेन ने बधे हुए होने पर भी धीरे-धीरे अलहदा हटने जा रहे हैं, क्योंकि उनके आर्थिक हितों में विरोध होता है। आयरलैण्ड (कुछ ऐतिहासिक कारणों से) और अफ़्रिका तो बहुत हट गये हैं। हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड के बीच कुछ कुदरती सबब हैं और साथ ही उनमें नारीश्वी और

हिन्दुस्तान की समस्यायें

लेखक
पण्डित जवाहरलाल नेहरू

मन्ता माहिन्य मण्डल, नई दिल्ली

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

ही हिन्दुस्तान में बड़ी-बड़ी तब्दीलियाँ होंगी और आजादी पास आयगी।

तमान दुनिया में राजनैतिक और आर्थिक संघर्षों के पीछे एक आध्यात्मिक हलचल है, प्राचीन मूल्यों और विश्वासों का विरोध है, और झगड़े से बाहर निकलने के लिए रास्ते को खोज है। हिन्दुस्तान में भी शायद दूसरी जगहों से ज्यादा, अध्यात्मवाद की उदय-पुष्पल है; क्योंकि भारतीय संस्कृति की जड़ें अब भी गहरी हैं और पुरानी जमीन में फैली हुई हैं, और हालाँकि भविष्य इगारे से आगे बुला रहा है लेकिन भूत उसे नज़रूती से रोके हुए हैं। प्राचीन संस्कृति से आधुनिक समस्याओं का हल नहीं मिलता। पूँजीवादी पश्चिम, जो कि उन्नीसवीं सदी में इतनी तेजी से चमक रहा था, अब अपनी शान खो चुका है और अपने ही विरोधों में इतना फँसा हुआ है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। सोवियत मुल्कों में जो नई सन्न्यता चलाई जा रही है उसमें कुछ दुराश्याँ होते हुए भी वह अपनी ओर खींचती है। वह आशा दिलाती है कि वह दुनिया में अनन तो क्रायम कर देगी, साथ ही उसमें यह भी उम्मीद दिखाई देती है कि लाखों के शोषण और दुःख का खात्मा होजायगा। शायद हिन्दुस्तान इस नई सन्न्यता को ज्यादा-से-ज्यादा अपनाकर इस आध्यात्मिक हलचल का हल निकाले; लेकिन जब वह ऐसा करेगा तो सारे ढाँचे को अपने आदर्शों की योग्यता से मेल बैठकाकर अपने ही तरीके से करेगा।

सन् १९३६।

आज़ादी के लिए हिन्दुस्तान की हलचल

हिन्दुस्तान की हालत पर कुछ लिखना आसान नहीं है। विदेशों में पक्षपातपूर्ण और इकतरफ़ा प्रचार इतने दिनों से होता चला आ रहा है कि हरेक अहम मसला गड़बड़ हो गया है और उससे हिन्दुस्तान की स्थिति का एकदम झूठा अंदाज होता है। हिन्दुस्तान में पिछले तीन-चार बरसों में आर्डिनंस का राज्य है, जिसका कुछ कानूनी तरीकों में फ़ौजी कानून ने निकट-सम्बन्ध है। अख़बारों के ऊपर कड़ी निगाह रखकर न सिर्फ़ लोगों को अपने ख़यालान जाद्विर करने से ही रोका गया है, बल्कि वे ख़बरें भी दबा दी जाती हैं जो हिन्दुस्तान में त्रिदिव-संस्कार को लागू कर लगी हैं। अख़बारों के हाथ-पैर बाध दिये गये हैं। राजनीतिक मसलों पर सार्वजनिक

जिन्हें वहाँके वाशियों को अदा करना पड़ता है, चाहे क्रमुर हो या न हो।

अंग्रेज अखबार तरह-तरह की बातें लेकर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर हमला करते हैं। उनके वक्तव्यों में असंगति साफ़ दिखाई देती है, पर इसका उन्हें खयाल नहीं है। एक तरफ़ कांग्रेस को प्रतिगामी संस्था कहकर उसपर मिल-मालिकों का कब्ज़ा बतलाया जाता है, दूसरी तरफ़ वे लगान-बन्दो को बोलगेविकों का काम कहा जाता है। यह कहकर वे शान्ति-प्रिय किसानों को अपनी चालाकी से भड़काते हैं। ऐसे अखबार तक जो सब बातें सच-सच जानते हैं, एकदम ऐसी झूठी खबरें फैलाते हैं जिनका घटनाओं से कोई संबंध नहीं होता। कुछ समय पहले, अंग्रेजी के सर्वोत्कृष्ट साप्ताहिकों में से एक ने लिखा था कि अस्पृश्यता-निवारण और हरिजन-उद्धार का आन्दोलन पिछले साल गांधीजी के उपवास ने चलाया था और कांग्रेस ने इन वर्गों के लिए अपने द्वार बन्द कर दिये हैं। असलियत यह है कि यह आन्दोलन पुराना है और सन् १९२० में गांधीजी के कहने पर कांग्रेस ने इसे अपने प्रोग्राम का एक बड़ा हिस्सा बनाया था। तबसे हिन्दुस्तान के सबसे बड़े आन्दोलनों में से एक रहा है। कांग्रेस ने कभी हरिजनों को बाहर नहीं किया है, और पिछले तेरह बरसों से उसने बराबर जोर दिया है कि ऊँची-से-ऊँची कार्यकारिणियों में हरिजनों के प्रतिनिधियों का चुनाव होना चाहिए। यह जरूर है कि गांधीजी के उपवास ने इस आन्दोलन को बहुत आगे बढ़ाया है।

हिन्दुस्तान और हमारे पूर्वी देग आमतौर से रहस्यमय समझे जाते रहे हैं और कहा जाता है कि उनमें जातियाँ विचित्र तरीकों से काम करती हैं, पर उन्हें समझने को कभी मज्जी कोशिश नहीं की गई। यह इतिहास और भूगोल का जाड़भरा विचार गायब किनी औमन कस्तरवेटिव या लिबरल राजनीतिक के विचित्र और बेदुनियाद विचारों ने मेल खाता है, जिसके पाम और कोरे ऐसी दृष्टि ही नहीं है जिम्हा बट मरान के मके। लेकिन मज्जर तो इतिहास और फालू घटनाओं की दैज्ञानिक और आधिष व्यागना में दिग्गम करता है, और यह अचरज की बात है कि

पूर्ण काम था। औद्योगिक कार्यकर्ताओं ने, ज्ञानतौर से बम्बई में, मजूर-आन्दोलन खड़ा कर दिया और आगे बढ़कर उन्होंने क्रांतिकारी विचार बना लिये। एक संगठित दल की हैसियत से उन्होंने कांग्रेस को सहयोग नहीं दिया; लेकिन कांग्रेस का उसपर बहुत असर पड़ा। बहुतांश ने कांग्रेस की लड़ाई में हिस्सा लिया। साथ ही साथ भारतीय मजूर हड़तालों के जरिये पूँजीवादियों के खिलाफ अपनी लड़ाई चलाते रहे।

ज्यों-ज्यों कांग्रेस स्वतंत्र विचार की होती गई और जन-साधारण की मदद उसे मिलती गई, त्यों-त्यों भारतीय स्थापित स्वार्थ, जो उसमें अपना स्थान रखते थे, भयभीत होते गये और उसमें से बाहर भी निकल गये। जो दबे उन्हींमें से एक छोटासा मामूली तरम या उदारदल कायम हुआ। जन-साधारण के सम्पर्क में आने से आर्थिक मामले कांग्रेस के मानने आये और समाजवादी विचार-धारा फैलने लगी। समय-समय पर वृहत्-से गोलमोल समाजवादी प्रस्ताव पास हुए। सन् १९३६ में कांग्रेस ने कराची में इन दिशा में, आर्थिक कार्यक्रम का प्रस्ताव पास करके एक निश्चित कदम बढ़ाया। पिछले चार बरनों में कांग्रेस की प्रवृत्ति लड़ाई और मौजूदा इमाने में दुनिया में नदी और आर्थिक प्रवृत्तियों का चेहरा में आगे बढ़ना इन सबने कांग्रेस को मजबूती

तत्त्वोक्तियों को रोकने के लिए मिल गये हैं। लन्दन की गोलमेज सम्मेलन स्थापित स्थायी की ऐसी ही दृष्टिकोणी थी। उस तरह हमारी आजादी की लड़ाई आज़िमी तौर पर सामाजिक स्वतंत्रता की लड़ाई भी होती जा रही है।

'आजादी' शब्द अच्छा शब्द नहीं है। उसका मतलब है तनहाई। और मौजूदा दुनिया में ऐसी तनहाई आजादी नहीं हो सकती। लेकिन इस शब्द का इस्तेमाल इसलिए किया गया है कि उसमें अच्छा और दूसरा कोई शब्द नहीं है। इस शब्द में यह मतलब नहीं निकाला जाना चाहिए कि हम बाकी दुनिया में अपनेको अलग कर लेना चाहते हैं। हम एक संकीर्ण और हमलेवर राष्ट्रवाद में यकीन नहीं करते। हम तो आत्म में एक-दूसरे पर निर्भर होना चाहते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग चाहते हैं; लेकिन साथ ही हमें यकीन है कि साम्राज्यवाद पर कोई निर्भरता या उसके साथ अच्छा सहयोग नहीं हो सकता। इस तरह हम हर तरह के साम्राज्यवाद में एकदम आजादी चाहते हैं। लेकिन इसमें उन अंग्रेजों तथा हमारे आदमियों के साथ का हमारा सहयोग खत्म नहीं हो जाता, जो हमारा शोषण नहीं करना चाहते। साम्राज्यवाद के साथ किसी भी हालत में समझौता न हो सकता है और न होगा।

इसलिए, इसकी नींव पर हमारी आजादी की लड़ाई सामाजिक व्यवस्था का जड़ में बदल डालने और जन-साधारण के शोषण का खान्ना खाने के लिए है। ऐसी तर्क सामक्या है जब 'हिन्दुस्तान के स्थापित स्थायी का खान्ना खाने दिया जाय' 'सर्वे अहमर' का बदलने में या महज सामन्तीयकरण में जैसा कि हमें कहा जाता है या अंग्रेजों आहूँ पर अंग्रेज की जगह किसी 'हिन्दुस्तानी' का गद देने में हमें कोई फायदा नहीं है। हम तो उस पद्धति को सुधारलियत करने हैं जो हिन्दुस्तान के आत्म लोणों का खून चूसती है। उसके यहाँ में 'बदल' हो जाने पर ही आत्म लोणों का आगमन मिलेगा।

लन्दन की गोलमेज सम्मेलन की बिल्कुल दूसरी ही दृष्टिकोण पर चली है। उसका पूरा मतलब उगीद-उगीद यह रहा है कि इसके स्थापित

स्वार्थ को वह बचावे और ऐसा बनावे कि कोई उन्हें नुकसान न पहुँचा सके। इस 'जी हुजूरो' की भीड़ को वह और बढ़ाना चाहती है। इस तरह गोलमेज की तमाम योजना आम लोगों के शोषण को कम करने के बजाय उनपर और नया बोझ लाद देती है। भारत-मंत्री हमें बताते हैं कि वैधानिक तब्दीलियाँ होने से लाखों का खर्च बढ़ जायगा। इसलिए जबतक दुनिया की मौजूदा आर्थिक मंदी दूर नहीं होती और हिन्दुस्तान खुदहाल नहीं होता तबतक इन्तजार किया जाना चाहिए। मंत्री महोदय अगर इस बेजारी को अपनी ही तरह से दूर करना चाहते हैं तो उन्हें बहुत दिनों तक इन्तजार करना पड़ेगा। उनके वक्तव्य से पता चलता है कि जो कुछ दुनिया में हो रहा है और आगे होनेवाला है, उसको उन्होंने बिल्कुल नहीं समझा है। यह 'व्हाट्ट हाल' और 'इण्टिया ऑफिस' के प्रभुओं की दलील की अजीबोगरीब मिसाल है।

हिन्दुस्तान विद्रोह की हालत में है; क्योंकि मजदूर, किसान और निम्न मध्यश्रेणियों का शोषण करके चूसा जा रहा है। उन्हें तुरन्त सहायता चाहिए। उन्हें तो अपने भूमे पेट को भरने के लिए रोटी की दरकार है। बहुत-से जमींदार तक भिखारी की हालत में हो गये हैं; क्योंकि जमीन की जमाबन्दी का तरीका खत्म होना जा रहा है। इस सर्वनाश और चारों तरफ फैली मृगीयत से छुटकारा पाने का उपाय यह निकाला जा रहा है कि स्थापित स्वार्थों की मदद की जाय, जिसकी वजह से कि यह सब हुआ है, और एत अर्धसामन्त-प्रथा को मजबूत करने की कोशिश की जा रही है, जिसकी उपयोगिता तभीकी खत्म हो चुकी है और जो तन्त्रनी के तन्त्र में एक रोड़ा है। इससे अलावा जमना पर और बोझ लादा गया है और तब हमें बताया जाता है कि जद निर्दिष्ट अपनेआप ही ठीक होजायगी तब तब्दीलियाँ करने का दबत आसना।

यह नाफ है कि इस तरीके से काम करना भाव्य-जाति के दान-मे प्राणियों से सम्बन्ध रखनेवाले एक दमे मनने को टालनेवाला करता है। गोलमेज की योजना वाले ब्रिटिश पार्लियामेंट इसे उनी शत में स्वयं से अस्वीकार करने मजूर करने हिन्दुस्तान की एक

भी समस्या को नहीं मुलज्जा सकती। चर्चिल-लॉयड-ग्रुप ने जो इसका विरोध किया है और मि० वाल्डविन ने बहादुरी के साथ जो उम्की तरफ़दारी की है, उसके बारे में इंग्लैंड में बड़े तूल-तवील वाँधे गये हैं। जहाँतक हिन्दुस्तान का सम्बन्ध है, इन सब मजाकिया लड़ाइयों में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं है: क्योंकि इन लड़ाइयों का नतीजा कुछ भी हो, उसमें उन योजना के बारे में जो एकदम प्रतिगामी, निकम्मी और अव्यावहारिक हैं, उसका मत नहीं बदल सकता। ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तान के अपने पिछलग्गुओं, जमींदारों और प्रतिगामी दलों को, जिनमें कट्टर धार्मिक अज्ञानी भी शामिल हैं जिन्हें गांधीजी ने उनके मांगने पर हमला करके भयभीत कर दिया है, लेकर दलबन्दी कर सकती है। इन जुदा-जुदा दलों का साथ लेने में सरकार को अगर मजा आता है, तो हमें कोई शिकायत नहीं है। उसमें तो हमारी सामाजिक नब्दीली करने और साथ ही राजनैतिक नब्दीली करने का काम और आसान हो जाता है।

प्रकाशक.

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली ।

संस्करण

नवंबर १९३९ : १०००

जून १९४० : २०००

मूल्य

एक रुपया

मुद्रक

एस. एन. भारती,

दिग्विजय टाइप प्रेस, नई दिल्ली

दूसरी समस्याओं को भी मुलजा देगी। ये समस्याएँ अहम बन गई हैं; क्योंकि उन्हें हल करने का काम उन्हींके चुने हुए आदमियों के हाथ में न सौंपकर सरकार के चुने हुए आदमियों के हाथ में सौंप दिया गया है। यही प्रतिक्रियावादी मनोनीत व्यक्ति है जो आपस में एकमत नहीं हुए और दिखाया यह गया कि हिन्दुस्तानी आपस में राजी नहीं हो सकते। हिन्दुस्तानियों को कभी असली मौका दिया भी गया है कि वे अपनी समस्याओं को अपनेआप मुलजा लें? जहाँतक कांग्रेस का संबंध है, उसे ज्यादा मुश्किल नहीं है; क्योंकि उसने तो बहुत दिनों से अल्पसंख्यकों को अधिकार देने के लिए अपनेको तैयार कर लिया है।

कांग्रेस अपने लिए कोई ताकत नहीं चाहती। मुझे यकीन है कि वह राष्ट्रीय पंचायत के फैसले को खुशी से मानेगी और जिस घड़ी राजनैतिक आजादी मिल जायगी, वह अपनेको खत्म कर देगी। लेकिन मौजूदा हालातों में या निकट-भविष्य में ऐसी राष्ट्रीय पंचायत बुलाई भी जा सकेगी, इसमें सन्देह है।

जितनी इसमें देर की जायगी, उतनी ही ज्यादा हिन्दुस्तान की राजनैतिक समस्या आर्थिक समस्या बनती जायगी और आखिरकार सामाजिक और राजनैतिक तन्दोली होकर रहेगी। हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई जरूरी तौर पर दुनिया की लड़ाई का हिस्सा है जो हर जगह शोषितों के छुटकारे के लिए और एक नई सामाजिक-संस्था स्थापित करने के लिए चल रही है।

अक्टूबर १९३३।

नाउने के लिए काफी ताकत पेश नहीं कर लेता तब तक ऐसी सभा काम नहीं कर सकती ।

यह पचासवें साम्प्रदायिक सम्मेलन को भी हाथ में लेगी और मैंने सुझाव दिये हैं कि अल्प-मत के विभाग से शक दूर करने के लिए अगर वह चाहे तो अपने प्रतिनिधियों का चुनाव पृथक् निर्वाचक-समूहों द्वारा कर सकती है । लेकिन यह पृथक् चुनाव केवल विधान-सभा के ही लिए होगा । आगामी चुनाव का तरीका तथा विधान सभा संबंध रखनेवाली और सब बातें यही सभा अपने आप तय करेगी ।

मैंने यह भी कहा है कि अगर उस विधान-सभा के निर्वाचित मुसलमान प्रतिनिधि कुछ साम्प्रदायिक मांगें पेश करने दें तो उन्हें स्वीकार कराने पर मैं जोर दूंगा । साम्प्रदायिकता का मैं बरा समझता हूँ, लेकिन मैं महसूस करता हूँ कि दमन से वह नहीं मिट सकती, बल्कि डर की भावना को दूर करने या हितों को जुदा कर देने से मिट सकती है । इसलिए हमें इस डर को दूर करना चाहिए और मुस्लिम जनता का यह महसूस करा देना चाहिए कि जो रक्षा वे वास्तव में चाहते हैं वह उन्हें मिल सकती है । यह बात महसूस कराने से, मैं समझता हूँ, कि साम्प्रदायिकता की भावना बहुत-कुछ कम होजायगी ।

लेकिन मुझे पक्का यकीन होगया है कि असली उपाय यह है कि साम्प्रदायिक सवाल के चारों ओर और आज की असुलियतों तक जो वनावटीपन पैदा होगया और फैल गया है, उसमें हितों को अलग किया जाय । आजकल की अधिकांश साम्प्रदायिकता राजनैतिक प्रतिक्रिया है और इसलिए हम देखते हैं कि साम्प्रदायिक नेता अनिवार्यतः राजनैतिक और आर्थिक मामलों में प्रतिक्रियावादी हो जाते हैं । उच्च-वर्गीय आदमियों के ग्रुप यह दिखाकर कि वे धार्मिक अल्पमत या बहुमत की साम्प्रदायिक मांगों को पूरा कराना चाहते हैं, अपने वर्ग के स्वार्थों को ढक लेते हैं । हिन्दुओं, मुसलमानों या दूसरे लोगों की तरफ से पेश की गई साम्प्रदायिक मांगों को अगर अच्छी तरह से देखा जाय तो पता चलेगा कि जनता से उनका कोई संबंध नहीं है । ज्यादा-से-ज्यादा

राजनैतिक और सामाजिक उन्नति और खुली प्रतिक्रिया में से किसी एक को पसन्द करना होगा। साम्प्रदायिकता के किसी भी स्वरूप से संबंध रखने का अर्थ होता है प्रतिक्रिया के साधनों को और हिन्दुस्तान में द्रिदिश साम्राज्यवाद को मजबूत करना; उसका अर्थ होता है सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का विरोध और अपने आदमियों के मौजूदा दुःख को बढ़ाई करना; उसका अर्थ होता है आंख बन्द करके दुनिया की ताकतों और घटनाओं को दरगुजर करना।

साम्प्रदायिक संगठन क्या हैं? वे मजहबी नहीं हैं, हालांकि वे अपनेको मजहबी ग्रुपों में ही मानते हैं और मजहब नाम का नाजायज क्लापदा उठाते हैं। सांस्कृतिक भी वे नहीं हैं। संस्कृति के लिए उन्होंने कुछ नहीं किया, हालांकि वे बहादुरी के साथ प्राचीन संस्कृति की बात करते हैं। वे नैतिक ग्रुप भी नहीं हैं; क्योंकि उनकी शिक्षा में नैतिकता बिल्कुल नहीं है। आर्थिक दलबन्दी भी वह निश्चय ही नहीं है; क्योंकि उनके सदस्यों को बाँवनेवाली कोई आर्थिक कड़ी नहीं है और न आर्थिक कार्यक्रम की ही छाया उनमें है। उनमें से कुछ तो राजनैतिक होने का दावा भी नहीं करते। तब वे हैं क्या?

असल में राजनैतिक ढंग से वे काम करते हैं और उनकी भाँवों भी राजनैतिक हैं; लेकिन जब वे अपनेको अ-राजनैतिक कहते हैं तो वे असली मसले को दरगुजर करते हैं और दूसरों के रास्ते को रोकने में ही वे कामयाब होते हैं। अगर ये राजनैतिक संगठन हैं तो हमें हज़र है कि यह जानें कि उनका उद्देश्य क्या है। वे हिन्दुस्तान की मुकम्मिल आजादी चाहते हैं या आंशिक आजादी—अगर बँसी भी आजादी कोई चीज़ है तो? क्या वे आजादी चाहते हैं या साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य? अच्छे-मै-अच्छे शब्द भी भ्रम पैदा कर देने हैं और बहुत-से आदमी अब भी नाँचते हैं कि साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य आजादी के ही बराबर है। असल में वे दोनों बिल्कुल भिन्न हैं, पिरोपी दिशाओं में जानेवाले वे दो रान्ने हैं। यह जानो का सवाल नहीं है कि चौदह आने है या सोलह आने; बल्कि भिन्न-भिन्न सिक्को-जँता सवाल है, जिनका आपस में विनिमय नहीं हो सकता।

फेडरेशन

मुझे ताज्जुब होता है कि लोग अब भी फेडरेशन की सम्भावना के बारे में बातें करते हैं। फेडरेशन की जोरों से मुखालफत करनेवाले तक उस बारे में बात करते हैं; क्योंकि उनका विचार है कि गण्यद फेडरेशन उनपर लागू कर दिया जाय। मंने तो बहुत पहले से ही फेडरेशन का रास्ता बन्द कर दिया है—सिर्फ़ इसीलिए नहीं कि मैं उसे नापसन्द करता और उसे हिन्दुस्तान के लिए नुकसान करनेवाला समझता हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मौजूदा हालातों में उसे लागू नहीं किया जाना चाहिए। इस बात को मैं और अच्छी तरह से समझता हूँ। मैं कोई पंगम्बर नहीं हूँ और आज की बदलती हुई दुनिया में या तो कोई बहुत बहादुर या कोई बहुत मूर्ख ही होगा जो कहेगा कि आगे क्या होगा। हिन्दुस्तान में चाहे जो कुछ हो सकता है और यह भी नुनकिन है कि हमारे टुकड़े-टुकड़े होजायें और फेडरेशन से भी बुरी किस्ती चीज के आगे हमें झुकना पड़े। यह नानुनकिन नहीं है कि कुछ वक्त के लिए दुनियाभर पर फ्रांसिज्म का शानन होजाय और आजादी को कुचल दिया जाय।

फेडरेशन के सवाल पर हमने पूरी तरह से भारतीय राष्ट्रवाद, भारत के स्वतन्त्र होने की इच्छा और ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के बीच संघर्ष की परिभाषा में विचार किया है। साफ़तौर से यह उसका एक ज्ञान पहलू है और यह स्पष्ट है कि यह संघर्ष उनमें छिपा है और अगर फेडरेशन को लागू करने की कोशिश की गई तो वह संघर्ष सामने आजायगा। फेडरेशन की योजना की अच्छाई या बुराई पर हमें बहस करने की जरूरत नहीं है। उसके बारे में चाक्री बहा और लिखा जा चुका है।

खास बात तो यह है कि हिन्दुस्तान उसे एकदम नापसन्द करता है और उसे स्वीकार नहीं करेगा। वस इतना ही हमारे लिए काफी है। लांड जेटलैण्ड और उनके साथी जो कुछ इस बारे में सोचते हैं, उससे हमें कोई मतलब नहीं है।

लेकिन एक और बड़ा पहलू है जिसे हमें ध्यान में रखना चाहिए। इन हाल के वरसों में हमने हिन्दुस्तान की समस्या पर उसके दुनिया की समस्या के सम्बन्ध में विचार करने की कोशिश की है। अगर हमने ऐसा नहीं किया होता तो भी घटनायें हमसे और दूसरों से ऐसा करा लेतीं। हरेक आदमी को यह महसूस करना चाहिए कि हम उस अवस्था में पहुँच गये हैं जबकि किसी समस्या के अलहदा राष्ट्रीय हल नहीं निकाले जा सकते; क्योंकि वे दुनिया के असली हल के संघर्ष में आते हैं। हमें दुनिया की परिभाषा में सोचना चाहिए। आज दुनिया सुगठित होकर एक इकाई बन गई है और एक हिस्से की हलचलें दूसरे हिस्सों को बिना छुए नहीं रहतीं। अधिक-से-अधिक लोग इस बात को महसूस करने लगे हैं; फिर भी हमेशा की तरह अमनियत तक हमारे दिमाग नहीं पहुँचते। लोग कहते हैं : शान्ति अम्बड है, स्वतन्त्रता भी अविभाज्य है, हिन्दुस्तान को भी बाँटा नहीं जा सकता, और आज किसी भी अहम मामले पर दुनिया भी एक है।

इसलिए हमारी आजादी की बात पर हमें दुनिया की ओर उसके महयोग की परिभाषा में विचार करना चाहिए। वृ दिन चले गये जब राष्ट्र अलहदा-अलहदा थे। अब तो आपस में महयोग न होने में दुनिया छिन्न-भिन्न होजायगी और लड़ाई अगर मची और राष्ट्रों में लगातार संघर्ष चला तो सबके सब बरबाद होजायगे।

आज दुनियाभर के अधिक-से-अधिक महयोग के बारे में सोचना मुश्किल है; क्योंकि कुछ शक्तियाँ और कुछ ऐसे ताकतवर राष्ट्र हैं जो दूसरी ही नीति चलाने पर कसर बसे हुए हैं। लेकिन यह मुमकिन हो-सकता है कि ध्येय ठीक रखवा जाय और महयोग की नींव डाली जाय, मुल्क में चाहे वह दुनियाभर का महयोग न भी हो। दुनिया के बुद्धिमान और

दूसरे बहुत-से लोग इसी बात की राह देख रहे हैं; लेकिन सरकारें, स्थापित स्वार्थ और बहुतसे बल इसके रास्ते में रोड़ा अटकवाते हैं।

बीन वरस पहले प्रेसिडेंट विलसन को दुनिया के सहयोग की सलक मिली थी और उन्होंने उसे महसूस करने की कोशिश की थी। लेकिन उस युग की लड़ाइयों की संघियों और राजनीतिज्ञों ने उस विचार को उड़ा दिया और बहुत दड़ी आगा की वज्र पर बने नक्बरे की तरह आज जेनेवा में राष्ट्र-संघ शोक-शीङ्कित खड़ा है। फेडरेशन को तो खत्म होना ही था, क्योंकि वह अच्छे मूर्त में शुरू नहीं हुआ था और मृत्यु के बीज उसके अन्दर मौजूद थे। वह तो एक ऐसी चीज को मजबूत बनाने की कोशिश थी जोकि साम्राज्यवादों और शासक राष्ट्रों के विरोध न्यायों की रक्षा नहीं कर सकती थी। उनकी शान्ति की पुकार का मतलब था तमाम दुनिया में सामुदायिक हमलों को जारी रखना और उनका प्रजातन्त्र दृष्ट-में राष्ट्रों को गुलामी में रखने के लिए लड़ावा था। फेडरेशन को खत्म होना पड़ा; क्योंकि उसमें खिन्दा रहने का वाशी माहम नहीं था। उस मूर्दे का अब पुनर्जीवन नहीं हो सकता।

लेकिन उस विचार का पुनर्जीवन हो सकता है जिसके लिए राष्ट्र-संघ बना है। लेकिन उस मकीर्ण चक्करदार या उलट्टे तरीके में नहीं जिन्ने पेनिन और जेनेवा में शकल अंगिकार की थी। दक्षिण स्वयं, ज्यादा ताकतवर और एक ऐसे रूप में जिसका आधार सामूहिक शान्ति, स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र पर हो। और किसी भी दृष्टिकोण पर उसका पुनर्जन्म नहीं हो सकता और न उसे संभव ही मिल सकता है।

दिलाने युक्त दायों में सामूहिक सुरक्षितता ही बची बचे हुई है। लेकिन इसीलिए और प्रथम में सुरक्षितता को मान्य कर दिया और उसके साथ राष्ट्र-संघ को भी मान्य कर दिया। मन्वे-मन्वे सरकारों के मान्यते होने में लिकोने राष्ट्र उन्हीं अन्तरी विचारों का एक ही दुर्भाग्य और शकल नकार ही है। हर में अपने राष्ट्रीय दृष्टों की दृष्टिकोण का रूप में, विचार उन्हीं में शकल के लिए सामूहिक सुरक्षितता ही सुरक्षितता में नहीं मान्यते,

दृष्टिकोण के लिए सामूहिक सुरक्षितता का विचार मान्यमान्य

बाज दक्षिण अफ्रिका में हमारी जैसी हालत है, वहाँपर हमारे देगवासियों को जैसा नीचा दिखाया जा रहा है, उसे देखते हुए हमें यह कहना कि हम ऐसे समूह के मेंबर बने रहें, हमारी बेइज्जती करना है।

लेकिन दुनियाभर का सहयोग होना जरूर चाहिए और तमाम राष्ट्रों को आजादी पर रोक लगाकर ऐसा कर देना चाहिए जिससे दुनियाभर में व्यवस्था और शान्ति रहे। वह सहयोग ब्रिटिश दल तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, चाहे वैसा होना मुमकिन ही क्यों न हो। ब्रिटिश दल तक सीमित करना तो उसके उद्देश्य को ही खोना है।

हाल ही में क्लेरेंस स्ट्रीट की पुस्तक 'यूनियन नाउ' निकली है, जिसमें बहुत-से लोगों का ध्यान अपनी तरफ खींचा है। उसमें इसी मस्ये पर विचार किया गया है। मि० स्ट्रीट तथाकथित प्रजातंत्रों के यूनियन को सिफारिश करते हैं। वह कहते हैं कि शुरू-शुरू में १५ मेंबर हों— संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, संयुक्त साम्राज्य (इंग्लैंड), फ्रान्स, कनाडा, आस्ट्रेलिया, आयरलैंड, दक्षिण अफ्रिका, न्यूजीलैंड, बेलजियम, हॉलैंड, स्वीडन, डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन और फिनलैंड। ये मुक्त एक मंडीय यूनियन बनावे जिनकी एक पार्लमेंट हो। सिर्फ एक मंड या मंडि ही न रखें। यह विचार जरूर ही ब्रिटिश साम्राज्य के विचार से बटकर है; लेकिन इसमें दो गलतियाँ हैं। एक तो यह कि इसमें रूस, चीन, हिन्दुस्तान तथा इनके कुछ देग शामिल नहीं हैं; इनके साम्राज्यवाद के दारे में उनमें कुछ नहीं बना गया है। रूस, चीन, हिन्दुस्तान की आजादी का मद ज्यादा दिन न रहे। लेकिन शुरू में ही ऐसा बनना ठीक नहीं है। उनमें बहुत-सी गलतियाँ सम्भावनाएँ हैं। इस यूनियन के दृष्टिकोण से पहले ही से अंध-धार्मिक और साम्राज्यवादी हैं। ही सचता है कि वे धार्मिक देशों की तरफ बरें और उनमें समझौता बनाने और रूस की मुक्तता बनने और चीन और हिन्दुस्तान की आजादी के आन्दोलनों का भी विरोध करें। बिना भी प्रजातंत्रिय यूनियन के हीरेक देश की तरफ सम्भावना नहीं है उद्योग कि रूस उसमें शामिल न हो।

और न साम्राज्यवाद के सच बन रहे ही दृष्टिकोण के अनुसार

मे इस बात को महसूस न किया हो या महसूस करके उस बात को कहना न चाहते हों; लेकिन फेडरेशन अपनी इस शकल और रूप में नहीं लागू किया जा सकता। हिन्दुस्तान बदल गया है और दुनिया भी एकदम बदल गई है। गोलमेज-कान्फ्रेंसों का जमाना भी प्राचीनता के धुंधलेपन में विलीन हो गया है। अगर अंग्रेज अड़लमन्दी करके अब भी उसे लागू करना चाहते हैं तो उसका मतलब होगा खतरनाक लड़ाई, और आज जो कुछ उनका हिन्दुस्तान में है वह भी छिन्न-भिन्न होजायगा। हमारे लिए उसका आगिरी नतीजा चाहे बुरा हो या अच्छा, लेकिन फेडरेशन लागू नहीं होगा।

इसलिए मेरे खयाल में फेडरेशन लागू नहीं किया जा सकता। वह तो अब मुर्दा है और कोई भी जादू का अंक उसे जिन्दा नहीं कर सकता।

२१ मई १९३९।

ब्रिटेन और हिन्दुस्तान?

आप कहते हैं कि "ब्रिटेन पुराने साम्राज्यवाद को छोड़ता जा रहा है। और अब उसका सक्रिय सम्बन्ध तो उस अराजकता को रोकने का रास्ता निकालना है जो विश्वव्यापी राष्ट्रीय आत्म-निर्णय से फैल जाती है और जिससे नई-नई लड़ाइयाँ उठ खड़ी होती हैं या साम्राज्यवाद के बारे में जिससे नई-नई बातें फैल जाती हैं।" मुझे तो कहीं भी दिखाई नहीं देता कि ब्रिटेन ऐसा कुछ भी कर रहा है। और न मुझे यही दिखाई देता है कि पुराना साम्राज्यवाद खत्म हो रहा है। हाँ, उसे कायम रखने, मजबूत बनाने की जी-जान से बार-बार कोशिश की जा रही है, हालाँकि कहीं-कहीं पर जनता को दिखाने के लिए बातें कुछ और ही रक्खी गई हैं। ब्रिटेन निश्चय ही नई-नई लड़ाइयाँ मिर नहीं लेना चाहता। वह तो एक मनुष्य और अघाई हुई मत्ता है। इसलिए जो कुछ उसके पास है, उसे वह खनने में क्यों डाले? वह तो अपनी मौजूदा हालत को ही कायम रखना चाहता है, जो कि स्वाम तोर में उमीके फायदे के लिए है। नये साम्राज्यवादों को वह पसन्द नहीं करना, इसलिए नहीं कि साम्राज्यवाद उसे नापसन्द है; बल्कि इसलिए कि वे उसके पुराने साम्राज्यवाद के संघर्ष में आते हैं।

आप हिन्दुस्तान के 'वैधानिक मार्ग' के बारे में भी कहते हैं। लेकिन यह 'वैधानिक मार्ग' है क्या? मे ममज्ज मकता हूँ ऐसी जगह जहाँ प्रजानन्धीय विधान होता है, वैधानिक कारंवाइयाँ हो सकती हैं; लेकिन जहाँ ऐसा नहीं है वहाँ वैधानिक तरीकों का कोई अर्थ

१. जनवरी १९३६ में बेउनवोलर में मिले एक अंग्रेज मित्र के उत्तर में।

दरवाजा बन्द करता है। मामूली सामाजिक सुधार भी पढ़ने के बाहर हैं, क्योंकि राज्य के आमदनी करने के मारे जरिये स्थापित स्वाधी के पोषण के लिए रहन हो गये हैं और विरोधाधिकारों के अन्तर्गत हो गये हैं।

आज हर एक मुल्क को प्रतिक्रिया की ताकतों और बुराई के खिलाफ भारी लड़ाई लड़नी पड़ती है। हिन्दुस्तान भी उसमें बाहर नहीं है। स्थिति की दुखभरी बात तो यह है कि अंग्रेज अनजाने आज अपनी पार्लमेण्ट और अफसरों के जरिये हिन्दुस्तान में एकदम बुराई की ही तरफ़दारी करते हैं। जिस चीज़ को वे अपने मुल्क में थोड़ी देर के लिए भी बर्दाश्त नहीं कर सकते, उसे हिन्दुस्तान में प्रोत्साहन देते हैं। आप अब्राहम लिंकन का बड़ा नाम लेते हैं और यूनियन को जो उसने अहमियत दी थी उसकी याद मुझे दिलाते हैं। मेरे खयाल में आप सोचते हैं कि ब्रिटिश-सरकार का कांग्रेस के आन्दोलन को दमन करने की कोशिश में यही ऊँचा उद्देश्य रहा था कि फूट डालनेवाली स्थितियों के होते हुए भी हिन्दुस्तान की एकता को कायम रखे। मुझे तो दिखाई नहीं देता कि किस तरह उस आन्दोलन ने हिन्दुस्तान की एकता के भंग होने का डर था। वास्तव में मेरा तो खयाल है कि सिर्फ़ यह या ऐसा ही कोई आन्दोलन मुल्क में अंगागी-एकता पैदा कर सकता है। अंग्रेजी सरकार की कार्रवाइयाँ तो हमें दूसरी तरफ़ ढकेलती हैं इसके अलावा क्या आप यह नहीं सोचते कि लिंकन का साम्राज्यवादी ताकत के अपने शासित मुल्क के आजादी के आन्दोलन के दमन करने की कोशिश से मुक़ाबिला करना बहुत दूर की बात है ?

आप चाहते हैं लोगों की बुरी और खुदगर्जी की आदतें और भावनायें दूर हों। क्या आप सोचते हैं कि अंग्रेज हिन्दुस्तान में इस दिशा में कुछ भी मदद कर रहे हैं ? प्रतिगामियों को जो मदद दी गई है उसके अलावा, अंग्रेजी राज्य के आधार पर विचार करना जरूरी है। उसका आधार बड़ी-चढ़ी और चारों ओर फैली हिंसा पर है और डर उसका प्रधान कारण है। एक राष्ट्र की तरक्की के लिए जो आजादी जरूरी

समझी जाती है, उसीका यह सरकार दमन करती है। निडर, बहादुर और क्राविल आदमियों को वह कुचलती है और डरपोक, अवसरवादी, हुनियासाज, बुद्धदिल और दंगाइयों को आगे बढ़ाती है। उसके चारों-तरफ़ खुफ़िया पुलिस, खबर देनेवाले और भड़कानेवाले आदमियों की फ़ौज रहती है। क्या यह ऐसा वायुमण्डल है जिसमें अच्छे-अच्छे गुणों या प्रजातन्त्रीय संस्थाओं की तरक्की हो ?

आप मुझसे पूछते हैं कि क्या कांग्रेस कभी बहुमत से तमाम हिन्दु-स्तान के लिए असली तौर पर सम्प्रदायवादियों, देसी नरेशों और सम्पत्ति के लिए एकसी रियायतें देने के अलावा कोई उदार विधान क़ायम कर सकती थी ? इससे यह मतलब निकलता है कि मौजूदा क़ानून रज़ामंदी से लिबरल विधान क़ायम करता है। अगर इस विधान को उदार कहा जा सकता है तो मेरे लिए यह समझना मुश्किल है कि अनुदार विधान फिर कैसा होगा। और बहुमत का जहाँतक सवाल है, मुझे सन्देह है कि जो कुछ अंग्रेजी सरकार ने हिन्दुस्तान में किया है उसके लिए कभी इतनी नाराज़गी और नापसन्दगी दिखाई गई हो जितनी कि इस नये क़ानून के लिए दिखाई गई है। जहरी रज़ामंदी लेने के लिए तमाम मुल्क में ख़ूब दमन हुआ है और अब भी नये क़ानून को चालू करने के लिए अखिल भारतीय और प्रांतीय क़ानून पान किये गये हैं, जो हर तरह की नागरिक आज़ादी का दमन करते हैं। ऐसी हालतों में बहुमत की बात करना बड़ा अजीब-ना लगता है। इस बारे में इंग्लैण्ड में बड़ी ग़लतफ़हमी फैली हुई है। अगर समझ्या का मुत्तादिला करता है, तो बड़ी-बड़ी दातों को दर्न्जर नहीं किया जा सकता।

यह सच है कि सरकार ने देसी नरेशों और कुछ अल्पसंख्यक दलों के साथ कुछ समझौता कर लिया है, लेकिन ये दल भी, कुछ एर तक, अपने प्रतिनिधित्व के दारे में कुछ मामूली समझौतों को छोड़कर, बेहद अन्वृष्ट हैं। मुख्य अल्पसंख्यक मुसलमानों को ही ग़ोशिए। कोई नहीं कह सकता कि ग़ोशमेज कांग्रेस के रसिम, अर्ध-नासम, और हमारे चुने ने मुस्लिम जनता या प्रतिनिधित्व करने थे। आपकी यह जानकारी

सम्बन्धित सबको राजी कर लेना स्पष्ट रूप से नामुमकिन होता है। अधिक-से-अधिक लोगों को राजी करने की कोशिश की जाती है; और बाक़ी जो रजामन्द नहीं होते, वे या तो जनतन्त्रीय कार्य-पद्धति के मूलाधिक उत्तमों आ मिलते हैं या दबाव और जोर से उनसे वसूला कराया जाता है। अंग्रेज़ी सरकार ने स्वेच्छाचारिता और अधिकारपरम्परा का प्रतिनिधित्व करके और मुख्यतः अपने ही फ़ायदों की रक्षा करने पर कमर कसके देशी नरेशों और कुछ प्रतिगामी लोगों की रजामन्दी पाने की कोशिश की और बहुत-से लोगों को दबाया। कांग्रेस की कार्य-प्रणाली निश्चय ही इससे भिन्न होती।

ये सब हवाई बातें हैं, तथ्य इनमें कुछ नहीं है; क्योंकि इसमें एक खास साधन ब्रिटिश सरकार को भुला दिया जाता है।

एक और विचार है जो ध्यान देने योग्य है। गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने अहिंसा पर जोर दिया है। उनमें इस बात पर भी जोर दिया है कि दुश्मन को दबाने के बजाय उनका हृदय-निर्वर्तन होना चाहिए। इस सिद्धान्त के आत्मवादी पहलुओं की और अन्तिम अर्थों में, वह क्रियात्मक है या नहीं, इसकी छानबीन हममें सम्बंध नहीं कि उनमें परेडू जगडों के अहिंसात्मक एक उच्च भावना पैदा हुए और 'हिन्दुस्तान के जड़-जुड़ा दलों की जीवन्त की काँग्रेस की तरह 'हिन्दुस्तान में एकमात्र रहने और विरोध की दृष्टि में एक भावना पैदा किया एक उच्च कीमती काजू है

वे मुश्किल से उनमें मिल सकते थे । मामूली अफसरों ने, टैक्स कलक्टरों ने, पुलिसमैनों ने, जमींदारों के गुमाशतों तक ने उन्हें मारा-पीटा, डांट-डपट कर धमकाया । हिम्मत उनकी एकदम खत्म होगई थी और मिलकर काम करने या जुल्म का मुक्काबला करने की ताकत उनमें नहीं बची थी । वे वुज्रदिलों की तरह दुबकते फिरते थे और एक-दूसरे की बुराई करते थे । और जब जिन्दगी मुहाल हो उठी तो उन्होंने उससे मौत में छुटकारा पाया । यह तमाम बड़ा संकटापन्न और शोकजनक था; लेकिन इसके लिए उन्हें दोषी कोई मुश्किल से ही ठहरा सकता था । वे तो सर्व-शक्तिमान परिस्थितियों के शिकार थे । गाँधीजी के असहयोग ने उन्हें इस दलदल में से बाहर खींचा और उनमें आत्म-विश्वास और स्वावलम्बन पैदा किया । उनमें मिलकर काम करने की आदत पड़ी; हिम्मत से उन्होंने काम किया और नाजायज जुल्म के सामने वे आसानी से नहीं झुकने लगे; उनकी दृष्टि फैली और थोड़ा-बहुत वे सामूहिक रूप से हिन्दुस्तान के बारे में सोचने लगे । वे राजनैतिक और आर्थिक सवालों पर (निस्सन्देह उलटे-पुलटे तौर पर) वाजारों और सभाओं में चर्चा करने लगे । निम्न मध्यम-वर्ग पर भी वही असर पड़ा; लेकिन जनता पर जो असर पड़ा, वह बहुत महत्वपूर्ण था । वह ज़बरदस्त परिवर्तन था । और इसका श्रेय गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस को है । वह विधानों या सरकारों के ढाँचों से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण था । सिर्फ इसी नींव पर ही मजबूत इमारत या विधान खड़ा किया जा सकता था ।

इस सत्रमे पता चलता था कि हिन्दुस्तानी जिन्दगी में एक गैबी हलचल मची थी । दूपरे मुल्कों में ऐमे मौको पर अक्मर बहुत ज्यादा हिंसा और नफ़रत हो आती है; लेकिन हिन्दुस्तान में महात्मा गांधी की कृपा से अपेक्षाकृत कहीं कम हिंसा और नफ़रत हुई । लड़ाई के बहुत-से गुण हमने अपना लिये और उसकी खौफ़नाक बुराइयों को छोड़ दिया, और हिन्दुस्तान की असली मौलिक एकता इतनी पास आगई जितनी पहले कभी नहीं आई थी । मजहबी और साम्प्रदायिक झगड़ों तक की आवाज़ दब गई । आप जानते हैं कि सबसे खास सवाल जो देहाती—

हिन्दुस्तान जानी हिन्दुस्तान के ८५ फ्रीसदी हिस्से पर अन्तर डालता है, वह जमीन का सवाल है: किसी भी दूसरे मुल्क में ऐसी हलचल और खूबार आर्थिक संकट से किसानों का विद्रोह मच जाता। यह गैर-मानूली बात है कि हिन्दुस्तान उस सबसे बच गया। ऐसा सरकार के दमन की वजह से नहीं हुआ; बल्कि गांधीजी की शिक्षा और कांग्रेस के सन्देश के बदौलत हुआ।

इस तरह कांग्रेस ने मुल्क में सब जीवित शक्तियों को आजादी दी और बुराई और फूट डालनेवाली प्रवृत्तियों का दमन किया। ऐसा उसने शांत, व्यवस्थित और सम्यक् तरीके से किया, जहां तक कि उन परिस्थितियों में मुमकिन हो सकता था, हालांकि इस तरह जनता को आजादी देने में खतरा भी था। सरकार पर उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई? उसे आप अच्छी तरह जानते हैं। सरकार ने उन जीवित और बहादुराना ताकतों को कुचलने की कामना की: तमाम बुरी और फूट डालनेवाली प्रवृत्तियों का प्रोत्साहन दिया। यह सब उसने बड़े ही अतन्मय ढंग से किया। पिछले छः सालों में सरकार बिल्कुल फासिस्ट तरीकों पर चली है। फ्रॉं सिक्रॉं इनना रहा है कि उसने खुले तौर से इस बात में गर्व नहीं दिखाया है, जैसा कि फासिस्ट मुल्क करते हैं।

पय बेहद लम्बा हो गया है और अब मैं नये वैधानिक कानून पर विस्तार से विचार नहीं करना चाहता। यह जरूरी भी नहीं है: क्योंकि हिन्दुस्तान में बहुत-से आदमियों ने उसका विम्लेषण किया है और उसकी आलोचना की है। उन सबके मत अलहदा-अलहदा होने पर भी सबने एकमत होकर इस नये कानून को एकजम नापसन्द किया है। अभी हाल ही में भारतीय लिबरलों के एक खास नेता ने नये विधान के बारे में खानगी में कहा था कि यह 'हमारी तमाम राष्ट्रीय समस्याओं का तीन्द्र-ने-तीन्द्र विरोध है'। यह कोई बम नाबों की बात नहीं है कि हमारे नरम दिल के राजनीतिक भी ऐसा ही सोचते हैं। फिर भी आप, हिन्दुस्तान की समस्याओं के लिए दूरी हमदर्दी रखते हुए, इस कानून को पसन्द करते हैं और करते हैं कि 'यह हिन्दुस्तानियों के हित में महान शक्ति'।

होना चाहिए। जिनमें राजनैतिक या सामाजिक भावनायें नहीं हैं वे ही निष्क्रिय, तटस्थ या उदासीन रह सकते हैं।

वोटर के इस कर्तव्य ने जुदा भी हरेक विद्यार्थी को, अगर उसे ठीक-ठीक शिक्षा मिली है, जिन्दगी और उसके मसलों के लिए अपनेको तैयार करना चाहिए; नहीं तो उसकी शिक्षा पर कौ गई मेहनत बेकार होजायगी। राजनीति और अर्थशास्त्र ऐसे मसलों को मुलजाते हैं। इसलिए आदमी जबतक उन्हें नहीं समझता, तब तक उसे ठीक पढ़ा-लिखा नहीं कहा जा सकता। बहुतसे आदमियों के लिए शायद यह मुश्किल है कि जीवन के निविड़ वन में साफ़-साफ़ रास्ता देखें। पर इससे क्या? चाहे हम उन मसलों का हल जानते हों, या न जानते हों, कम-से-कम हमें उसकी खासियत का अन्दाज़ तो होना ही चाहिए। जिन्दगी कौन-कौनसे सवाल हमसे करती है? जबाब इसका मुश्किल है; लेकिन अजीब बात तो यह है कि आदमी बिना सवालों को ठीक-ठीक समझे उनका जबाब देने की कोशिश करते हैं। ऐसा बेकार रख कोई गंभीर या विचारवान विद्यार्थी नहीं ले सकता।

तरह-तरह के बाद जो आजकल की दुनिया में अपनी अहमियत रखते हैं—राष्ट्रवाद, उदारवाद, सत्ताजवाद, साम्राज्यवाद, फ्रासिज्म वगैरा—ये जुदा-जुदा ढलों के रन्ही जिन्दगी के सवालों के हल करने की कोशिशें हैं। इनमें कौनसा हल ठीक है? या वे सब गलती पर हैं? हर हालत में हमें अपना निर्णय करना है और निर्णय करने के लिए जरूरी है कि ठीक-ठीक निर्णय करने की हममें समझ हो और ताकत हो। विचारों और कानों की स्वतंत्रता पर दबाव होने से ठीक निर्णय नहीं लिया जा सकता। अगर बिनाल नता हमारे गिर पर बैठती है और हमें आज़ादी में नाचने से रोकती है, तब भी ऐसा नहीं किया जा सकता।

एन तरह नव विचारवान लोगों के लिए, खान तौर से और लोगों की दमिन्दत विद्यार्थियों के लिए, या जरूरी हो जाता है कि वे राजनीति में पूरा-पूरा मैलागिय भाग ले। कुश्तरतन यह बात कम उमर के विद्यार्थियों की दमिन्दत, जिनके समझे जिन्दगी के समझे अपने में भी

नहीं हैं, बड़ी उमर के विद्यार्थियों पर ही लागू होगी जो जिन्दगी में पैर रख रहे हैं। लेकिन सैद्धान्तिक विचार ही ठीक तरह से समझने के लिए काफ़ी नहीं है। सिद्धान्त के लिए भी व्यवहार की जरूरत होती है। पढ़ाई के खयाल से ही विद्यार्थियों को चाहिए कि वे लेक्चर-हॉल को छोड़कर गाँवों, शहरों, खेत और कारखानों में जायें और वहाँकी अस-लियत की जाँच करें और आदमियों के कामों में, जिनमें राजनैतिक काम भी शामिल हैं, कुछ हद तक हाथ बंटावें।

आमतौर से हरेक को अपने काम की हद बाँधनी होती है। विद्यार्थी का पहला कर्तव्य यह है कि वह अपने दिमाग और जिस्म को शिक्षित करे और उन्हें विचार करने, समझने और काम करने के लिए तेज़ औज़ार बनाये। जबतक विद्यार्थी को शिक्षा नहीं मिलती, तबतक वह चतुराई के साथ न तो सोच सकता है और न काम कर सकता है। पर शिक्षा पवित्र सलाह पाकर ही नहीं मिल जाती। उसके लिए थोड़ा-बहुत काम में लगना पड़ता है। उस काम के लिए, मामूली हालतों में, सैद्धान्तिक शिक्षा मिलनी चाहिए; लेकिन काम को उड़ाया नहीं जा सकता, नहीं तो शिक्षा ही अधूरी रहेगी।

यह हमारी बदकिस्मती है कि भारत में पढ़ाई का तरीका एकदम नामौजू है; लेकिन उससे भी बड़ी बदकिस्मती उच्चाधिकार का वायु-मण्डल है, जो उसको चारों ओर से घेर रहा है। अकेली शिक्षा में ही नहीं; बल्कि हिन्दुस्तान में हर जगह लाल पोशाक वाली दिखावटी और अक्सर खाली मगज़ वाली ताक़त आदमियों को अपने ही तरीके के ढाँचे में ढालने की कोशिश करती है और दिमाग की तरक्की और खयालात के फँलाव को रोकती है। हाल ही में हमने देखा है कि उस ताक़त ने खेल-कूद के राज्य में भी कितनी गड़बड़ कर डाली है और इंग्लैंड में हमारी क्रिकेट-टीम को, जिसमें होशियार खिलाड़ी थे, उन नाजानकारों ने लँगड़ा कर दिया जिनका उसपर अधिकार था। क्राविल आदमियों का बलिदान किया गया, जिससे उस ताक़त की जीत हो। हमारी यूनीवर्सिटियों में यही ताक़त की भावना फैली हुई है और व्यवस्था रखने के वहाने वह उन सबको कुचल

डालती है जो चुपचाप उसके हुकम को नहीं मान लेते। वे ताकतें उन गुणों को पसंद नहीं करतीं जिन्हें आजाद मुल्कों में प्रोत्साहन दिया जाता है। वे साहस की भावना और आजाद हिस्तों में आत्मा के बहादुराना कामों को भी नहीं वर्दास्त कर सकती। तब अगर हममें से ऐसे आदमी नहीं पैदा हो सकते जो ध्रुवों को या एवरेस्ट को जीतने की कोशिश करें, तत्त्वों को जीतकर आदमी के लिए फ़ायदेमन्द बनावें, आदमी की नाजानकारी और डरपोकपन, सुस्ती और छुड़ाई को दूर करें और उसे ऊँचा बनाने की कोशिश करें, तो इसमें अचरज क्या है ?

क्या विद्यार्थियों को जरूर ही राजनीति में हिस्ता लेना चाहिए ? जिन्दगी में भी क्या वे हिस्ता लें—जिन्दगी को तरह-तरह की क्रियाओं में पूरा-पूरा हिस्ता ? या क्लर्क बने ऊपर से आये हुकमों को बजाते रहें ? विद्यार्थी होते हुए वे राजनीति से बाहर नहीं रह सकते। भारतीय विद्यार्थियों को और भी राजनीति के सम्पर्क में रहना चाहिए। फिर भी यह सच है कि मामूली तौर से अपनी बढ़ोतरी के काल में दिमागी और जिस्मानी शिक्षा की ओर उनका विशेष ध्यान होना चाहिए। उन्हें कुछ नियमों का पालन करना चाहिए; लेकिन नियम ऐसे न हों कि उनके दिमाग को ही कुचल डालें और उनके जोश को ही खत्म कर दें।

ऐसा मामूली तौर से हो, लेकिन जब मामूली क़ायदों को नहीं माना जाता तो ग़ैर-मामूली हालतें पैदा हो जाती हैं। महायुद्ध में इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी के विद्यार्थी कहाँ थे ? अपने कॉलिजों में नहीं, बल्कि खाइयों में मौत का मुक़ाबिला कर रहे थे और मर रहे थे। आज स्पेन के विद्यार्थी कहाँ हैं ?

एक गुलाम मुल्क में कुछ हद तक ग़ैर-मामूली हालतें होती हैं। भारत भी आज वैसा ही मुल्क है। इन हालतों का ख़याल करते वक़्त हमें अपनी परिस्थितियों और दुनिया की बढ़ती हुई ग़ैर-मामूली हालतों का भी ख़याल रखना चाहिए। और चूँकि हम उन्हें समझने की कोशिश करते हैं, इसलिए घटनाओं के निर्माण में, चाहे कितना ही थोड़ा क्यों न हो, हमें हिस्ता लेना पड़ता है।

फ़ासिज्म और साम्राज्य

'प्लेटन इटाली कमेटी' ने किंगडोम ऑफ़ में जिन परिवर्तन का आयोजन किया है, उसमें से स्पेन के साथ शामिल होना है। चाहे हम फ़्रांस के यूरोप के हमारे देशों में ही, चाहे दूर हिन्दुस्तान में, स्पेन और उसका दुःख-भरा नाटक, जो यहाँ खेला जा रहा है, हमारे मन पर बड़ा दुःख है; क्योंकि यह नाटक और समाज सिर्फ़ स्पेन का ही नहीं है, बल्कि समस्त दुनिया का है। हमारे इतना ग़याब करने का एक मक़द और है। स्पेन में आगिर में जो होगा, उसीपर हमारा भविष्य निर्भर करेगा है। बहुत-से आदमी जान गये हैं कि स्पेन की लड़ाई अब स्पेन की ही लड़ाई नहीं रही है, और न स्पेन के जुदा-जुदा देशों का यह पसन्द जग़रा ही है। यह तो स्पेन की धरती पर यूरोपभर की लड़ाई है। और मही कहा जाय तो, यह बाहर से दो फ़ासिज्म ताकतों का और लड़ग़रा का स्पेन पर हमला है। इसलिए स्पेन में दो विरोधी ताकत—फ़ासिज्म और फ़ासिज्म-विरोधी—अपने-अपने प्रभुत्व के लिए लड़ रही हैं। और प्रजातन्त्र, जो यूरोप के बहुत-से देशों में कुचल दिया गया है, अपनी जिन्दगी के लिए जी-जान से लड़ रहा है।

एक तरफ़ इटली के फ़ासिज्म और जर्मनी के नाज़ीज्म है तथा दूसरी ओर स्पेन का प्रजातन्त्र। उन्हीं की यह लड़ाई है। यह बात तो बिल्कुल साफ़ दिखाई देती है। और मेरा ख़याल है कि ज्यादातर अंग्रेज़ जो प्रजातन्त्र और आज़ादी के समर्थक हैं, वे स्पेन के आदमियों के साथ हमदर्दी रखते हैं। लेकिन इन्हीं आदमियों में से बहुत-से ऐसे हैं जो स्पेन के सम्बन्ध में ब्रिटिश-सरकार की नीति को शायद उतना साफ़-साफ़ नहीं समझते; लेकिन जब वे कुछ और आगे बढ़कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हिन्दुस्तान

फासिज्म और कम्यूनिज्म

हिन्दुस्तानी अखबार मेरे ऊपर बड़े महत्वान रहे हैं और उन्होंने मेरा बड़ा खयाल रक्खा है। और अपनी राय के प्रचार के भी बहुत-से मीठे उन्होंने मुझे दिये हैं। मैं इसके लिए उनका अहसानमंद हूँ। लेकिन कभी-कभी वे मुझे सदमा भी पहुँचाने हैं। बहुत बड़े सदमे जो हाल ही में मुझे पहुँचे हैं, उनमें एक सदमा आज का है, जो मुझे दिल्ली में कुछ मूलाक़ातियों की मूलाक़ात की रिपोर्ट से पहुँचा है। सबसे पहले दिल्ली के 'नेशनल काल' ने उसे छापा। उसे पढ़कर मुझे ताज्जुब हुआ कि मैंने जो कुछ कहा था, उसकी कौन-कौनो धारें बना ली गई हैं। बम्बई का 'फ्री प्रेस जर्नल' तो कुछ कदम और आगे बढ़ गया और मात कालम के मापक में उसने लिखा कि मैंने अपने भेद को जाहिर कर दिया और कहा कि कम्यूनिज्म ने फासिज्म का मैं ज्यादा पसन्द करता हूँ। मैं नहीं जानता कि अतक मैंने कोई बात छिपा रक्खी थी। पिछले तीन महीनों में मेरी वही काशिश रही है कि लिखकर और व्याख्यान देकर जिनकी नक़ाट के साथ मैं अपने विचारों का जाहिर कर सकता हूँ, उन्हें वे विचार बाह्य गलत ही या नहीं हा। लेकिन मैंने ना कम-से-कम वही उम्मीद की थी कि वे क्लिष्ट स्पष्ट हैं और कोई भी उनके बारे में गलती नहीं कर सकता। मुझे बड़ा सदमा हुआ है और मायूसी हुई है कि जा मैं यकीन इतना था और जो मेरा मतलब था ठीक उसमें इतना मतलब उसका उगाया गया है।

दिल्ली की मूलाक़ात की रिपोर्ट में उनकी गलतियों और बुराई धारें हैं कि उसे नये सिरे से दोबारा ही लिखा जा सकता है। मुधार की उनमें सुझाव नहीं है। दोबारा से लिखना नहीं चाहता। मैं जो विषय

कांग्रेस और समाजवाद

समाजवाद भला हो या बुरा, सुदूर भविष्य का एक सपना-मात्र हो या इस जमाने की अहम समस्या; पर इतना तो जरूर है कि इसने आज हम हिन्दुस्तानियों के दिमाग में एक अच्छी जगह करली है। इस शब्द की काफ़ी खींचातानी हुई है और हमसे जोर देकर कहा जाता है कि इसमें हिंसा की बू है या इसके पीछे कम्यूनिज्म की छाया है।

सच तो यह है कि समाजवाद क्या है, यह बहुतेरे आलोचकों की समझ में ही नहीं आया है। उनके दिमाग को इसकी एक धुंधली तस्वीर ही नज़र आती है। पेशेवर अर्थशास्त्री भी, सरकारी प्रचारकों की तरह, इसमें ईश्वर और धर्म को घसीटकर या विवाह और स्त्रियों के चरित्र-भ्रष्ट होने की बातें कहकर इसकी असलियत को खराब कर देते हैं। हमें इसके लिए उलाहना नहीं देना है, हालांकि ऐसे लोगों को, जो कहें कि हम अच्छी तरह पढ़-लिख सकने हैं, वर्णमाला ममज्ञाना एक झंझट का काम है। आश्चर्य तो यह है कि इस तरह की बातें, समाजवाद के बारे में यह गर्जन-तर्जन, वे करते हैं, जिन्हें यह पसन्द नहीं, जो इस शब्द को कोश में भी रहने देना नहीं चाहते, जो इस विचार-धारा के विरोधी हैं।

समाजवाद तो—जैसा कि हरेक स्कूली छात्र को जानना चाहिए— एक ऐसे आर्थिक सिद्धान्त का नाम है जो मौजूदा दुनिया की उलझनों को समझने और उन्हें सुलझाने की कोशिश करता है। यह इतिहास समझने का नया दृष्टिकोण और उससे मानव-समाज को संचालित करनेवाले नियमों को ढूँढ़ निकालने का नया तरीका भी है। दुनिया की एक काफ़ी तादाद के लोग इसमें विश्वास करते हैं और इसे कार्य-रूप में परिणत

हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता जोर बिना है, यह है, कि हम फिर भी इस सम्मिलित लक्ष्य को देखने का तरीका भी एक बना दें।

कोई नहीं चाहता कि हम कांग्रेस-तंत्र में कुछ पैदा हो जाए। यह तो सभी हमेंसा में कहते जा रहे हैं कि हम अपने शोषणवादी इस्तेमाल में मजदूर मोर्चा दें, लेकिन हम यह कैसा भूला भला है कि हमारे अन्दर परम्परा सत्ताओं के मजदूर हैं और जैन-जैन हम मिथानी नरकको करने जाते हैं, समाजवाद और आर्थिक तंत्रों को दूर रखा, हमारे ये मजदूर ज्यादा माफ़ होने जाते हैं। अब कांग्रेस परामर्शदाता के साथ में आर्डर का नरमदल तर्क हट गये। इसका सबसे अधिक पक्ष नरको था; बल्कि जब हम राजनैतिक प्रगति में बहुत आगे बढ़ने लगे और नरमदलवालों ने समझकर या बिना समझे देखा कि जना आगे बढ़ना उनके स्वार्थ के लिए परतर्नाक साधित होगा, तो वे प्रयोग होगये। ताजुब की बात तो यह है कि बावजूद उनके कि हमें अपने कुछ पुगने साधियों ने जुदा होने पर बहुत अकमोम होता हमने कथिम कमजोर नहीं हुई। कांग्रेस ने एक दूसरी बड़ी तादाद का अपने अन्दर साथ किया और वह एक अधिक शक्तिशाली और ज्यादा प्रतिनिधित्व करनेवाली मन्था होगई। उनके बाद अमदवाग का जमाना आया और फिर कुछ आदमी बहुमत के साथ लम्बी छलांग मारने में असमर्थ होगये। वे भी हटे (इस बार भी राजनैतिक बुनियाद पर ही हालांकि इसकी आड में बहुतेरी दूसरी बातें भी थी)। वे हट गये फिर भी कांग्रेस कमजोर नहीं हुई। एक बड़ी तादाद में नये लोग इनमें शामिल हुए और अपनी लम्बी तवारीख में पहली बार यह हमारे देहातो में एक उर्वरदन्त शक्ति बनी। इस तरह यह पहलेपहल भारत का प्रतिनिधित्व करनेवाली और अपने आदेशों से करोड़ों नर-नारियों को जीवन-भय करनेवाली सिद्ध हुई। वहाँ जैसे ही हम राजनैतिक क्षेत्र में आगे बढ़े, छोटे-छोटे गिरोहों और हमारी विशाल जन-राशि के बीच का पुगना नघपं ज्यादा नाफ़ मालूम पड़ा। यह संघर्ष हमने पंदा नहीं किया। इसकी ओर बिना खयाल किये हम आगे बढ़े और इससे हमारे बल और प्रभाव में तरक्की हुई।

विभागी भाषण, को महत्व मिल गया।

कुछ भाषणों के बाद भारतीय प्रतिनिधिमण्डल पर भी जोर दे लिये। उनको इस तरह का भी संभावना के कुछ विरोध मुख्य में लाये। यह पुनः विभागा के प्रतिनिधिमण्डल, संविधान और परिणामों के साक्षात् के सम्बन्ध में भाषण था। फुट के दोष में उरुफ भाषणों ने इस बात पर आश्चर्य का बरत नहीं कर दिया। यह भी साक्षरता के सम्बन्ध में नहीं था, किन्तु भी उदाहरण था, जोर में उदाहरण था।

इस तरह हम स्वयं ही कि कश्मिर के अन्दर जोर बाहर स्वयं सम्बन्धी भाषण हमेशा में ही आये जाते रहे। एकदम यह बात बार-बार-एक जैसी समाज-सुधार-सम्बन्धी थी, या बहुत-से विरोधों में सम्बन्ध रखनेवाली राजनीतिक या मजदूर-किसानों में समाहार रखनेवाली होई जाती थी, वे स्वार्थों के भाषण हमेशा में ही पेश हो जाते रहे। हम फुट में बिल्कुल बनना चाहिए, पर इसके अस्तित्व ही हम प्रयत्न करना कैसे कर सकते हैं? आगिर, हम इसके लिए हर ही क्या सकते हैं? माल्टा माल्ट तक जोर देकर कहने आये कि हम जनता के लिए हैं। इसके बाद हमें एक ही बात देवनी है और वह यह कि हम भाषण में जनता का कर्ता तक नुकसान होता है? इस मवाल का जवाब भारतीयों ने अपने माल्टा काफ्रेम (लन्दन १९३१) के एक व्याख्यान में दिया था, उन्होंने कहा था —

“सबसे बड़कर कांग्रेस उन करोड़ों मूल, भूख में अधमर लोगों का प्रतिनिधित्व करती है, जो ब्रिटिश भारत या तथाकथित भारतीय भारत के एक छोर में दूसरे छोर तक मान लाने गाँवों में फैले हुए हैं। हरेक स्वार्थों को, अगर वह कांग्रेस की राय में सुरक्षित रखने जाने के काबिल हैं, इन गूंगे करोड़ों किसान-मजदूरों के स्वार्थों का महायक बनना होगा। इसलिए आप बार-बार कुछ स्वार्थों में परस्पर साफ-साफ मुठभेड़ होते देखते हैं। और अगर कहीं सच्ची विशुद्ध मुठभेड़ हुई, तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के, कांग्रेस की ओर से, घोषित करना हूँ कि कांग्रेस इन गूंगे करोड़ों किसानों के हितों की खातिर हर तरह के हितों का बलिदान कर देगी।”